अप्रैल 2003
Rs. 10/-
चन्दामामा

PARLE™

50p* only

पेश हैं पारले स्मूदीज़. रीयल स्मूद कैंडीज़.

पारले की नई कैंडी–स्मूदीज़ के स्मूद स्वाद का मज़ा लीजिए.
ये क्रीमी और 5 ज्यूसी फ़्लैवर में मिलती है. फिर क्यूं न एक रोमांचभरी बाइट का मज़ा लें.

HERO
ACTIVE
YANKEE
Heroes start early.
Ride, race, take a tumble or even take a fall.
Because it's never too early to be a hero.
HERO CYCLES

विशेष आकर्षण

सम्पुट - १०७ अप्रैल - २००३ सञ्चिका - ४

राजगुरु की सलाह १९

छिदरी थैली ३१

माया सरोवर १३

विघ्नेश्वर ४५

अन्तरङ्गम्

SUBSCRIPTION

For USA and Canada
Single copy $2
Annual subscription $20

Remittances in favour of
Chandmama India Ltd.
to
Subscription Division
CHANDAMAMA INDIA LIMITED
No. 82, Defence Officers Colony
Ekkatuthangal, Chennai - 600 097
E-mail : subscription@chandamama.org

शुल्क

सभी देशों में एयर मेल द्वारा
बारह अंक ९०० रुपये
भारत में बुक पोस्ट द्वारा १२० रुपये
अपनी रकम डिमांड ड्राफ्ट या
मनी-ऑर्डर द्वारा
'चंदामामा इंडिया लिमिटेड'
के नाम भेजें।

संस्थापक
बी. नागिरेड्डी और चक्रपाणि

प्रबुद्ध नागरिकों की आवश्यकता

धर्म को प्रायः एक जीवन-शैली के रूप में परिभाषित किया जाता है, इसलिए यह बहुत व्यक्तिगत जैसी कुछ चीज़ होती है। फिर भी, सामान्य रूप से धर्म की पहचान उन नामों से की जाती है जो स्वाभाविक रूप से विभिन्न जीवन-शैलियों को अपनानेवाले भिन्न-भिन्न समुदाय के लोग इसे देते हैं। वे अपने पर्यावरण के अनुकूल इसे विविध प्रतीकों, अनुष्ठानों, कर्मकाण्डों तथा उत्सवों से जोड़ते हैं जो इनके धर्मों का प्रतिनिधित्व करते हैं। दुर्भाग्यवश कुछ संकीर्ण विचार के लोग आवश्यकता से कम सहिष्णु होते हैं और दूसरों को अपने अनुष्ठानों और कर्मकाण्डों को संपन्न करने से रोकते हैं। ऐसी गतिविधियों के परिणाम स्वरूप धर्मों के बीच वैर-भाव आ जाता है। इन दिनों हमलोग ऐसी प्रवृत्ति देख रहे हैं, जहाँ धर्मों की छाया में उग्रवादी लोग पहले से स्थापित शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं।

हमारे राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम को सुनिये। वे कहते हैं कि "धर्म को, बढ़ते हुए साम्प्रदायिक दंगों को रोकने में एक आध्यात्मिक शक्ति के समान काम करना चाहिए। तभी विकास में असमानता को दूर किया जा सकता है।" यह सुझाव देने की प्रेरणा उन्हें तब हुई जब मुम्बई के एक छात्र ने उनसे पूछा कि साम्प्रदायिक हिंसा को कैसे रोका जा सकता है। उन्होंने इसका समाधान भी बताया : "प्रबुद्ध नागरिकों के निर्माण की आवश्यकता है। यह तभी किया जा सकता है जब विद्यालयों के पाठ्यक्रम में मानव-मूल्यों से संबंधित कक्षाओं का प्रावधान हो।"

यह सच है कि धर्म ने सामाजिक सुधार लाने एवं मानवमूल्यों को विकसित करने में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। चन्दामामा की कामना है कि वर्तमान पीढ़ी भावी नागरिक के रूप में एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करे जहाँ सामंजस्य और शान्ति का राज्य हो।

सम्पादक : *विश्वम*

Visit us at : http://www.chandamama.org

'हीरोज़ ऑफ इंडिया' प्रश्नोत्तरी में अपनी प्रविष्टि भेजें और आश्चर्यजनक पुरस्कार जीतें।

भारत के नायक-१९

यहाँ प्राचीनकाल के कुछ ऋषि-मुनियों और आध्यात्मिक नायकों का प्रसंग है। क्या उन्हें जानते हो?

तीन सर्वशुद्ध प्रविष्टियों पर पुरस्कार में साइकिलें दी जायेंगी।

1. मैं भारत के प्रथम महाकाव्य का रचयिता हूँ। यह एक अनायास रहस्योद्घाटन है। मैं कौन हूँ?

---

2. पहले मैं राजा था, लेकिन बाद में ऋषि बन गया। तुम मेरी पुत्री शकुन्तला को तो जानते होंगे! मैं कौन हूँ?

---

3. मैंने विन्ध्याचल को सिर झुकाने पर बाध्य किया। मैं तब दक्षिण जाकर बस गया। मेरा नाम क्या है?

---

4. मैं 'महाभारत' महाकाव्य का रचनाकार हूँ। मैंने वेद को चार भागों में विभाजित किया और पुराणों तथा उपनिषदों की रचना की। मेरा नाम बताओ।

---

5. मैं ब्रह्मा का पुत्र माना जाता हूँ। मैं राम तथा उसके भाइयों का गुरु हूँ। क्या मुझे जानते हो?

प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये गये स्थान को स्पष्ट अक्षरों में भरें। इन पाँचों में से आपका प्रिय आदर्श नायक कौन है? और क्यों? दस शब्दों में पूरा करें :

मेरा प्रिय राष्ट्रीय नायक .... है, क्योंकि

....

प्रतियोगी का नाम: ....

उम्र: .... कक्षा: ....

पूरा पता: ....

....

पिन: .... फोन: ....

प्रतियोगी के हस्ताक्षर: ....

अभिभावक के हस्ताक्षर: ....

इस पृष्ठ को काटकर निम्नलिखित पते पर ५ मई २००३ से पूर्व भेज दें।

हीरोज़ ऑफ इंडिया प्रश्नोत्तरी-१९
चन्दामामा इन्डिया लि.
नं.८२, डिफेंस ऑफिसर्स कॉलोनी
ईक्काडुथांगल, चेन्नई-६०० ०९७.

निर्देश :-

१. यह प्रतियोगिता ८ से १४ वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए है।
२. सभी भाषाओं के संस्करणों से इस प्रतियोगिता के लिए तीन विजेता चुने जायेंगे। विजेताओं को समुचित आकार की साइकिल दी जायेगी। यदि सर्वशुद्ध प्रविष्टियाँ अधिक हुईं तो विजेता का चुनाव 'मेरा प्रिय नायक' के सर्वश्रेष्ठ विवरण पर किया जायेगा।
३. निर्णायकों का निर्णय अंतिम होगा।
४. इस संबंध में कोई पत्राचार नहीं किया जायेगा।
५. विजेताओं को डाक द्वारा सूचित किया जायेगा।

पुरस्कार देनेवाले हैं

शिल्पसुंदरी

महाराजा चंद्रशेखर देवगिरि का शासक था। वह समर्थ शासक तो था ही, साथ ही उसे कलाओं में भी रुचि थी। वह कलात्मक वस्तुओं को, कलात्मक व्यक्तियों को बहुत चाहता था। उसने कितने ही कलाकारों का स्वागत-सम्मान किया। देश-विदेश से आयी कितनी ही कला-कृतियों को उसने इकट्ठा किया और अपने कला-मंदिर में सुरक्षित रखा। उन कलात्मक संपदाओं को देखने के लिए सुदूर प्रांतों से लोग आया करते थे और महाराज के कला-प्रेम की भरपूर प्रशंसा करते थे।

महाराजा चाहता था कलामंदिर की अभिवृद्धि के लिए तथा अन्य कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए एक कलाकार-अधिकारी की नियुक्ति करूँ। उसने राज्य के कोने-कोने में इसकी घोषणा करा दी।

इस घोषणा को सुनकर कितने ही कलाकार आये। महाराजा उनके नैपुण्य की परीक्षा लेता था। अंत में तीन कलाकार चुने गये — माधव, सागर, आनंद। इन में से एक को चुनना था।

महाराजा ने उन तीनों को अपने कलामंदिर की एक शिल्पसुंदरी दिखायी और कहा, "जो जितना अधिक मूल्य देंगे, वे इसके मालिक बनेंगे।" तब माधव ने कहा, "महाराज, इस शिल्पसुंदरी के लिए अपनी पूरी संपत्ति लुटा दूँगा।"

सागर ने भी इसी प्रकार की बातें कहीं। परंतु आनंद ने कहा, "महाराज, कला सबमें आनंद बाँटने के लिए है। यह आनंद किसी एक ही व्यक्ति तक सीमित होना नहीं चाहिए। यह शिल्पसुंदरी इसी कलामंदिर में रहेगी तो नित्य आनेवाले कलाप्रेमी इसे देखकर आनंद विभोर हो जायेंगे।"

महाराजा ने खुश होकर आनंद की पीठ थपथपाते हुए कहा, "तुम सच्चे कलाकार हो। तुम्हीं कला-अधिकारी के पद के लिए योग्य हो।"

- आनंद राव

पिशाचों का पुण्य

बहुत पहले की बात है। गोपवरं नामक गाँव में माधव नाम का अठारह साल का एक युवक रहता था। वह इतना नादान था कि जो कुछ भी सफ़ेद दिखता, उसे दूध मानता था और जो कुछ काला दिखायी पड़ता, उसे पानी मान बैठता था। उसके बचपन में माँ-बाप गुज़र गये, इसलिए उसकी दादी ने ही उसे पाला-पोसा। बेचारी वह भी कुछ ही सालों में मर गयी।

दादी के मर जाने के बाद माधव एकदम अनाथ हो गया। गाँव के ही संपन्न परिवारों में भरसक मेहनत करता था और वे जो कुछ खाने को देते थे, खा लेता था। उनके पशुओं को चराने वह पास के ही जंगल में ले जाता था। उसे इस बात का दुख नहीं था कि उससे बेग़ारी करायी जा रही है।

एक दिन हर रोज़ की ही तरह गाता हुआ पशुओं के साथ वह इधर-उधर जाने लगा तो पेड़ पर लेटे हुए एक पुराने पिशाच ने उसे देख लिया। पास के एक दूसरे नये पिशाच से उसने पूछा, "सुना, उस युवक का कंठस्वर कितना मधुर है! उसका गाना सुनकर मेरी भूख मिट जाती है।"

नये पिशाच ने तब कहा, "वह तो पास ही के गाँव का है। उसका नाम माधव है। अनाथ है। उसका दिल भी बहुत अच्छा है। उसकी अच्छाई का फ़ायदा उठाकर उससे बेग़ारी करानेवालों की भी कमी नहीं है।" फिर उसने माधव के बारे में और कुछ कहा।

ध्यानपूर्वक सुनने के बाद पुराने पिशाच ने कहा, "तुम्हारी बातें सुनकर एक अच्छा विचार

- कुसुम कुमारी -

बेचारे की गिर गयी होगी। ग्रामाधिकारी के सुपुर्द कर दूँगा तो वही इसके मालिक को ढूँढ निकालेगा।'' यों कहकर उसने उसे पगड़ी में लपेटकर कमर में बाँध लिया।

यह देखते ही पुराना पिशाच बड़बड़ाने लगा, ''मैंने इसे इतना नादान नहीं समझा था। अब यह थैली ग्रामाधिकारी के सुपुर्द कर देगा।''

नया पिशाच हँसते हुए बोला, ''जब तुमने वह थैली उस जगह पर रखी तभी मुझे लगा कि ऐसा ही कुछ होनेवाला है।''

''तो इसकी मदद हम कैसे करें?'' पुराने पिशाच ने पूछा।

''माधव कोई विकलांग नहीं है। उसके हाथ-

मेरे मन में जगा है। पाप करके हम पिशाच बने हैं। अगर हम ऐसे जीवन से मुक्ति पाना चाहते हों तो हमें कुछ पुण्य कार्य भी करना चाहिए।''

नये पिशाच ने पूछा, ''हम कैसे माधव की सहायता कर सकते हैं?'' पुराने पिशाच ने उत्साह-भरे स्वर में कहा, ''मैं इसका उपाय बताता हूँ। मेरे साथ चले चलो।'' फिर दोनों पेड़ से उतर पड़े।

पुराने पिशाच ने सोने की अशर्फ़ियों से भरी एक थैली ज़मीन पर फेंक दी। माधव गाता हुआ उसी तरफ़ चला आ रहा था। उसने वह थैली उठा ली और उसे खोलकर देखा। थैली के अंदर सोने की अशर्फ़ियों को देखते ही चकित होकर वह ऊँचे स्वर में कहने लगा, ''बाप रे, सोने की इतनी अशर्फ़ियाँ!'' फिर वह कहने लगा, ''किसी

पैर बिलकुल दुरुस्त हैं। काम भी अच्छा कर लेता है। ऐसे लड़के को सोना और संपत्ति देने का यह अर्थ हुआ कि हम उसकी अच्छाई को उससे छीन रहे हैं। मणि माणिक्य तो प्राणहीन हैं, उनके बदले किसी प्राणवान साथी का प्रबंध हम कर सकें तो अच्छा होगा। दुख-सुख में वह साथ देगा, उसके जीवन को संवारेगा और आत्मसम्मान के साथ जीने का रास्ता दिखायेगा। वह सोने की लाख अशर्फ़ियों से बेहतर है।'' नये पिशाच ने कहा।

इस पर पुराने पिशाच ने आक्रोश के साथ कहा, ''हाँ, हाँ, मैं भी जानता हूँ, ये सारी नीतियाँ। पर बताओ तो सही, किस तरह से हम उसकी सहायता करें।''

''मैं सबकुछ बताऊँगा, पर उसके पहले तुम

धनिक के वेष में उसके पास जाओ और यह कहकर उससे थैली ले लो कि वह तुम्हारी ही थैली है।'' नये पिशाच ने कहा।

पुराना पिशाच धनिक बनकर गया और थैली ले आया। तब नये पिशाच ने बताया, ''ध्यान से सुनो। माधव के गाँव में ही मणि नामक एक सुंदर और अच्छी लड़की है। उसका पिता हाल ही में मर गया। चार दिनों में उसकी शादी एक लड़के से होनेवाली है, जो शराबी और जुआरी है। हाल ही में उसने चोरी भी की और सैनिकों से बचकर भाग आया है। उस लड़के के मामा ने इस शादी का इंतज़ाम मणि के गाँव में ही कराने का इंतज़ाम किया। उसे डर है कि वह उस लड़के की शादी उसी के गाँव में करायेगा तो संभव है, सैनिक आयें और उसे पकड़ लें। इसी डर के मारे दुल्हेवाले दस दिन पहले ही मणि के घर आ गये। सैनिकों को पता चल गया है कि वह अपराधी इसी गाँव में है इसलिए वे भी उसे पकड़ने इसी गाँव की तरफ़ आ रहे हैं। अब हमें ऐसा करना होगा।'' फिर नये पिशाच ने पुराने पिशाच के कानों में कुछ कहा।

दूसरे ही क्षण दोनों पिशाचों में से एक घोड़ा बना और दूसरा चोर की तरह घबराया हुआ सा उस मार्ग पर प्रकट हुआ।

सैनिक लाठियाँ घुमाते हुए आगे बढ़ने लगे। उन्होंने बीच मार्ग में घोड़े को देखा और चोर को भी। वे एकदम खुशी से फूल उठे और चिल्लाने लगे, ''चोर हाथ आ गया। अरे बदमाश, लुच्चे,

दिवानजी के भवन में घुसकर चोरी करने की तेरी यह हिम्मत। ठहरो।'' यह कहकर वे दौड़कर उसकी तरफ़ आने लगे। घोड़े के रूप में पुराने पिशाच पर चोर बना पिशाच बैठ गया और गाँव की तरफ़ भागने लगा। सैनिक पीछा करते हुए उसी प्रांगण में आये, जहाँ शादी होनेवाली थी।

इतने में पुराने व नये पिशाच ने अपने रूप बदल लिये और दुल्हे पर व एक अधेड़ उम्र की सुहागिन स्त्री पर हावी हो गये। सैनिकों को देख दुल्हा आग-बबूला होकर बोला, ''तुम लोग किसकी तरफ़ के रिश्तेदार हो?''

इस सवाल के जवाब में एक सैनिक ने नाराज़ी से कहा, ''हम सैनिक हैं। चोरों को छोड़कर हम सबके रिश्तेदार हैं। तुम्हीं कोटगिरी के कपिलेश्वर के बेटे कमलेश हो न? तुम्हें दिवान के भवन में

चोरी के अपराध में गिरफ़्तार करते हैं। तुम्हें बंदी बनाकर ले जाने के लिए आये हैं।

यह सुनते ही कमलेश के पिता कपिलेश्वर ने कहा, "मैं नहीं मानता कि मेरा बेटा चोर है। जो भी हो, दुल्हन के गले में पहले मंगलसूत्र बाँधने दीजिए। फिर बात कर लेंगे।"

कपिलेश्वर के ऐसा कहते ही दोनों सैनिक ज़ोर से हँस पड़े और बोले, "बाप और बेटा चोरियाँ करने से ही संतुष्ट नहीं हैं, बल्कि शादी करके एक लड़की की ज़िन्दगी भी तबाह करना चाहते हैं। पहले चलो यहाँ से।" कहते हुए उन्हें पकड़ लिया और ढकेलते हुए वहाँ से ले गये।

घर में सब रोने बिलखने लगे। तब अधेड़ उम्र की सुहागिनी पर हावी पिशाच दुल्हन की माँ को सांत्वना देते हुए कहने लगा, "रोती क्यों हो? तुम्हें तो खुश होना चाहिए। बाप-बेटे का असली रूप क्या है, मालूम हो गया है। अपनी बेटी के लिए सुयोग्य बर चाहती हो तो मेरी बात सुनो। माधव को तुम जानती ही हो। वह संपन्न नहीं है, लेकिन गुणवान है। वह सुस्त नहीं है, मेहनती है। किसी से व्यर्थ कुछ पाने की आशा नहीं रखता। अगर अपनी बेटी मणि की शादी उससे कर दोगी तो वह तुम्हारा सहारा बनेगा। बिना किसी तक़लीफ़ के तुम्हारी और तुम्हारी बेटी की ज़िन्दगी आराम से गुज़र जायेगी। कहो, तुम्हारा क्या निर्णय है?"

सबने नये पिशाच की बातों का समर्थन किया। दुल्हन मणि ने भी अपने आँसुओं को पोंछते हुए कहा, "मुझे मालूम है माधव कितना अच्छा लड़का है। अगर मुझसे शादी करने पर वह राजी हो जाये तो मैं इसे अपना भाग्य समझूँगी।"

माधव उस समय मेहमानों के आदर-सत्कार में लगा हुआ था। लोगों ने उससे यह बात बतायी। क्षण भर के लिए वह स्तब्ध रह गया, पर बाद में मणि से शादी करने के लिए सहमत हो गया। यों माधव और मणि का विवाह संपन्न हुआ। सबने सहयोग और आशीर्वाद दिया।

पिशाचों को यह शादी देखते हुए बहुत खुशी हुई। उन्हें लगा कि उन्होंने एक अच्छा काम किया और पुण्य-कमाया। फिर वे वहाँ से चुपचाप चलते बने।

माया सरोवर

15

(हँसों के रथ पर हमला करनेवाले जलवृक राक्षसों का जयशील तथा उसके अनुचरों ने वध कर दिया। माया सरोवरेश्वर तथा कांचनमाला रथ पर से जिस जंगल में गिर गये थे, वहाँ पर सफ़ेद धुआँ उठते देख सब लोग उसी ओर चल पड़े। इसके बाद -)

हँसों का रथ जब उलट गया, तब उसमें से खिसक कर माया सरोवरेश्वर, कांचनमाला और रथ सारथी-तीनों जंगल में अलग-अलग स्थानों पर गिर पड़े। माया सरोवरेश्वर को तो एक विचित्र अनुभव का मौक़ा मिला।

माया सरोवरेश्वर हँसों के रथ पर से जहाँ गिरा था, वहाँ पर नरभक्षी लोग निवास करते थे। उन्हें इधर एक सप्ताह से शिकार खेलने के लिए एक भी जंगली जानवर दिखाई न दिया था। इसका कारण यह था कि दूर से शिकार की खोज में बाघों का एक झुंड उस प्रदेश में आ पहुँचा था। उस झुंड ने, जंगल में जो भी शिकार मिला, उसे मारकर खा डाला था। उस झुंड का गर्जन सुनकर जंगली जानवर घबरा गये थे और निकट के पहाड़ों को पार करके दूर भाग गये थे।

नरभक्षियों के सरदार का नाम शेरसिंह था। उसे मालूम हुआ था कि उसके कुछ अनुचर उसके दल को छोड़ भागने की कोशिश में हैं।

वह मंदिर अत्यंत पुराना था। उसके किवाड़ न थे। बरसात के मौसम में आंधी-वर्षा से बचने के लिए जंगली जानवर जब तब रात के वक़्त उसमें आश्रय लिया करते थे।

उस दिन शेरसिंह ने सूर्योदय के वक़्त शिथिलालय में पहुँचते ही एक अद्भुत दृश्य देखा। जंगली देवता की मूर्ति के सामने एक बहुत ही बड़ा अजगर एक भेड़िये को अपनी लपेट में लिये हुए था। मगर उसका सिर भेड़िये के मुँह में फँस गया था।

उस दृश्य को देख शेरसिंह भय-कंपित हो उठा। वह उसी वक़्त भागने को हुआ, पर पुनः हिम्मत बटोरकर जंगली देवता के सामने साष्टांग दण्डवत करके उठ खड़ा हुआ और बोला, ''हे जंगली देवता ! तुम्हारी महिमा बड़ी विचित्र है ! एक हफ़्ते से हम भूख से तड़प रहे हैं। हम तुम्हारे भक्त हैं। हम पर तुम्हारी कृपा नहीं है। यह अद्भुत दृश्य दिखाकर हमें तुम क्या आदेश दे रहे हो?''

इसके थोड़े क्षण बाद उजड़ी दीवार के पत्थरों में से एक जंगली बिलाव अपना सर निकालकर जोर से चिल्ला उठा, ''म्याँव ! म्याँव !''

''यह तो एक और अद्भुत है ! इसका गूढ़ार्थ बूढ़ा पुजारी गणाचारी ही बता सकता है !'' यों कहते शेरसिंह अपनी जाति के लोगों को पुकारते उनकी तरफ़ आ पहुँचा।

उस वक़्त नरभक्षी औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे सब जंगल के एक छोटे से मैदान में बैठकर अपनी भूख मिटाने के लिए कंद-मूल-फल खाने के संबंध में

उसे लगा कि उसके पुरखे कई पीढ़ियों से जहाँ रहते आये हैं, उस प्रदेश को छोड़कर चला जाना महान पाप है। उसका कहना था कि उस प्रदेश को छोड़ कर चले जाने पर जटाओंवाले बरगद की छाया में स्थित शिथिलालय के जंगली देवता को साल-भर में एक बार ही सही, नर मांस का नैवेद्य चढ़ानेवाला कौन होगा? इस प्रकार अपने देवता की समय पर पूजा-आराधना न हुई तो उसका फल उसकी जाति को भोगना पड़ेगा।

शेरसिंह ने यों विचार करके निर्णय किया कि किसी भी उपाय से अपनी जाति के लोगों को उस प्रदेश को छोड़कर जाने से रोकना चाहिए। इसलिए इसके लिए आवश्यक शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करने के वास्ते वह जटाओंवाले बरगद के नीचे स्थित जंगली देवता के मंदिर की ओर चल पड़ा।

बहस कर रहे थे। शेरसिंह शिथिलालय से हाँफता आया और चिल्ला उठा, "जंगली देवता ने हम पर कृपा की है। गणाचारी पुजारी कहाँ पर है?"

सभी नर भक्षियों ने एक साथ अपने सरदार की ओर देखा। उसके शब्दों में उन्हें हिरणों के झुंड और जंगली सुअरों के रेवड़ दिखाई दिये। उनमें से नरभक्षी जाति के थोड़े से जवान उछल पड़े और पूछा, "सरदारजी ! क्या जंगली देवता के मंदिर में हिरण और सूअर तो नहीं पहुँच गये हैं? क्या हम भाले और तलवार लेकर आयें? शायद हमारे देवता ने हमारे आहार के वास्ते इन जानवरों को यहाँ पर भेजा हो?"

शेरसिंह ने एक बार चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई, और गणाचारी को न पाकर खीझते हुए कहा, "अरे कमबख़्तो ! मैंने क्या पूछा था और तुम लोग क्या जवाब दे रहे हो? बूढ़ा गणाचारी कहाँ पर है? जंगली देवता के मंदिर में मैंने जो दृश्य देखा, उसका कोई गूढ़ार्थ है। उसका रहस्य खोलनेवाला व्यक्ति अकेला गणाचारी ही है। उसे जल्दी बुला लाओ।"

गणाचारी कुछ दूर एक पेड़ की छाया में बैठकर भूख के मारे परेशान हो ऊँघ रहा था। लड़कों से जब शेरसिंह को यह ख़बर मिली, तब वह गणाचारी के निकट पहुँचा। मंदिर का वृत्तांत सुनाकर बोला, "गणाचारी ! उस दृश्य का क्या रहस्य है? क्या यह अर्थ तो नहीं कि देवता ने हम पर बड़ी कृपा की है और हमें शीघ्र ही पर्याप्त मात्रा में जानवरों का माँस मिलनेवाला है?"

गणाचारी इन बातों पर ध्यान न देकर, ऊँघता हुआ बोला, "पुजारी के रूप में मेरे बाल सफ़ेद हो गये हैं। जंगली देवता कोई भी बात साफ़ नहीं बतलाते। सबके सब रहस्यमय होती हैं। मुझे तो ऐसा महसूस होता है कि हमारी जाति के लोगों को भी अन्य जंगली जातियों की भांति जब जो मिला उसे खाने की आदत डालना ज्यादा उचित होगा।"

बूढ़े गणाचारी की ये बातें पूरी भी न हो पाई थीं कि शेरसिंह बगल में खड़े एक जवान के हाथ से लाठी खींचकर उसे मारते हुए बोला, "अरे दुष्ट ! क्या तुम यह बात भूल गये हो कि हमारी जाति को माँस को छोड़कर अन्य पदार्थों का स्पर्श तक नहीं करना चाहिए !"

चोट खाकर गणाचारी उठ खड़ा हुआ और केश झाड़ते हुए चिल्ला उठा, "हे मेरे जंगली

देवता !'' तब सरदार से पूछा, ''अबे शेरसिंह ! अब तुम साफ़-साफ़ बतला दो, आख़िर बात क्या है? तुम्हारे वार से मेरी भूख जाती रही और मेरे बदन में उल्लास बढ़ता जा रहा है।'' ये शब्द कहते गणाचारी ने उछलकर पेड़ की डाल पकड़ ली और बंदर की तरह झूलने लगा।

शेरसिंह का आदेश पाकर दो-तीन नरभक्षी युवकों ने गणाचारी को उसके पैर पकड़कर खींच लिया और उसकी कमर थामकर उसे सीधे खड़ा किया। तब शेरसिंह ने बूढ़े गणाचारी को मंदिर का सारा वृत्तांत सविस्तार दुबारा सुनाया।

इस बार गणाचारी ने सारी बातें सावधानी से सुनीं, सिर उठाकर थोड़ी देर तक आकाश की ओर ताका, नीचे झुककर थोड़ी-सी मिट्टी हाथ में ली और मंत्र पढ़कर सब लोगों पर छिड़क दिया। फिर कहा, ''यहाँ पर खाली मैदान में आग सुलगाकर कुण्डे में पानी गरम करो। इस बीच कुछ लोग जाकर जंगली देवता के मंदिर से अजगर, भेड़िया तथा जंगली बिलाव को यहाँ पर ले आओ।''

''मैं नहीं समझता कि जंगली बिलाव अभी तक पत्थरों के बीच बैठा हम लोगों का इंतज़ार करता रहेगा। अजगर और भेड़िये ने अब तक एक दूसरे को मार डाला होगा। फिर भी मैं उन्हें अभी मँगवा लेता हूँ।'' शेरसिंह बोला।

''जंगली बिलाव अगर हाथ न लगा तो वह जिस पत्थर पर बैठकर म्याँव-म्याँव चिल्ला रहा था, कम से कम उस पत्थर को लाना होगा ! उसे भी उबलते पानी के कुण्डे में डालना होगा!'' बूढ़ा गणाचारी आँखें दिखाते हुए बोला।

''जंगली देवता ने अपने मंदिर में वह अद्भुत दृश्य क्यों दिखाया? क्या हमें शीघ्र जंगल में जानवर मिल जायेंगे?'' शेरसिंह ने पूछा।

यह सवाल सुनकर गणाचारी उछल पड़ा और अपने बाल नोचते ऊँघते हुए चिल्ला उठा, ''मैं कौन हूँ? जंगली देवता हूँ! मेरी कृपा रही तो तुम लोगों को जानवरों का माँस ही नहीं, बल्कि मानवों का माँस भी मिल जाएगा। अब उठो, चलो।''

इसके बाद कुछ लोगों ने पेड़ों के बीच खाली प्रदेश में एक बहुत बड़ा गड्ढा खोद डाला। उस पर पानी का एक बड़ा कुण्डा रखा और आग सुलगाई। कुछ जवान सूखी लकड़ी लाकर आग में झोंकते गये। थोड़ी देर में सफ़ेद धुआँ आसमान में उठने लगा।

उसी समय माया सरोवरेश्वर के हँसों के रथ पर गिद्धों ने हमला किया। हंसों ने रथ को इधर-उधर खींचकर उलटा दिया। सिर्फ़ अंगरक्षक रथ का एक लक्कड़ पकड़कर नीचे गिरने से बच गया, लेकिन रथ का सारथी, राजा कनकाक्ष की पुत्री कांचनमाला और माया सरोवरेश्वर ऊपर से पलटा खाते नीचे आने लगे।

उस वक़्त हवा के झोंके खाकर तीनों अलग-अलग दूर जा गिरे। केश बिखेरे उछलनेवाले बूढ़े गणाचारी ने नीचे गिरनेवाले माया सरोवरेश्वर को देखा और चिल्लाकर कहा, ''ओह ! भूख से तड़पनेवाली हमारी जाति पर जंगली देवता ने अनुग्रह किया है। लो, देखो ! हमारे लिए आहार के रूप में मानव को ही भेज रहे हैं ! कुण्डे में पानी को जल्दी गरम करो। मानव, अजगर, भेड़िया तथा जंगली बिलाव-इतने सारे प्राणियों का माँस पहले जंगली देवता को नैवेद्य के रूप में चढ़ाना होगा। इसके बाद जंगल में हमें जानवरों का माँस भर पूर मिल जाएगा।''

हंसों के रथ से फिसलकर नीचे गिर जाना माया सरोवरेश्वर के लिए दुर्भाग्य की बात ज़रूर थी, पर भाग्यवश वह सीधे नीचे आया और नर भक्षियों द्वारा गरम किये गये जल के कुण्ड़े में जा गिरा। उसने पानी में एक डुबकी लगाई, धीरे से चिल्लाकर ऊपर उठा और कुण्ड़े का किनारा पकड़कर चारों ओर नज़र दौड़ाई, मगर चारों तरफ़ नर भक्षियों को देख वह घबरा गया।

बूढ़ा गणाचारी मुस्कुराते हुए उसके निकट पहुँचा और बोला, ''जंगली देवता ने हमारे लिए दुर्बल मानव को नहीं, माँसवाले मानव को भेजा किया है और हमारे श्रम को बचाने के लिए सीधे कुण्डे में पहुँचा दिया है।''

गणाचारी के ये शब्द सुनने पर माया सरोवरेश्वर को पता चला कि वह न केवल जंगली जाति के लोगों के हाथ फँस गया है, बल्कि नरभक्षी लोगों के हाथ में पड़ गया है। यों वह सोच ही रहा था कि कुण्डे के खौलते हुए जल में उसका शरीर झुलसने लगा।

माया सरोवरेश्वर चिल्लाते हुए कुण्डे से बाहर निकलने को हुआ। इस पर बूढ़ा गणाचारी एक जलती लकड़ी को लेकर उसकी ओर निशाना करके चिल्ला उठा, ''अबे, जंगली देवता के द्वारा हमारे लिए आहार के रूप में भेजा गया मानव ! कुण्डे के जल से बाहर निकलने की तुमने कोशिश

की, तो मैं तुम्हें नीचे के अंगारों में भून डालूँगा। ख़बरदार !''

ये बातें सुनने पर माया सरोवरेश्वर को लगा कि उसकी मौत निश्चित है, फिर भी गरम पानी में जलकर मर जाना पीडादायक है ! चाहे किसी भी उपाय से सही, कुण्डे से बाहर निकलना है। सोचते-सोचते उसे एक उपाय सूझा। उसने ऐसा अभिनय किया, मानो गणाचारी को कोई रहस्य बता रहा हो। वह धीमे स्वर में बोला, ''तुम जंगली देवता के गणाचारी हो न? तब तो यह रहस्य तुम्हीं से बताना है। तुम्हारे देवता ने मेरे साथ और तीन लोगों को तुम्हारे आहार के रूप में भेजा है।''

नरभक्षी पुजारी गणाचारी ने विस्मय में आकर पूछा, ''फिर वे लोग कहाँ हैं?''

''लगता है कि वे लोग रास्ता भूलकर कहीं और उतर गये हैं। अगर तुम मुझे अपने साथ ले चलो तो मैं उन्हें खोजकर पकड़ा सकता हूँ।'' माया सरोवरेश्वर बोला।

गणाचारी को ये बातें विश्वसनीय प्रतीत हुईं। उसने तत्काल खौलते पानी के कुण्डे में से माया सरोवरेश्वर को बाहर निकलवाया, और एक को आदेश दिया कि यह वृत्तांत जंगली देवता के मंदिर में गये हुए शेरसिंह को सुना दे। तब वह चार लोगों को साथ ले माया सरोवरेश्वर के साथ जंगल की ओर चल पड़ा।

उन लोगों ने जंगल के कई प्रदेशों में ढूँढा। एक पेड़ के नीचे रथ सारथी का चाबुक उन्हें दिखाई दिया। ''मेरा रथ सारथी तथा कांचनमाला इस पेड़ की डालों में फँस गये होंगे।'' यों सोचते माया सरोवरेश्वर ने सर उठाकर ऊपर देखा। उस पेड़ की डालों में कोई न था, पर ऊपर हँसों का रथ उड़ता हुआ दिखाई पड़ा।

उस समय ऊपर उठनेवाले धुएँ को देखते हुए सिद्धसाधक और मकरकेतु भी नर भक्षकों के प्रदेश की ओर बढ़ रहे थे। सिद्धसाधक अपने वाहन नर वानर को हांकते 'जय महाकाल की' चिल्ला उठा। यह चिल्लाहट सुनकर माया सरोवरेश्वर तथा उसके साथ रहनेवाले सभी लोग आपाद मस्तक काँप उठे। *(क्रमशः)*

राजा विक्रम
और वेताल की
नई कथाएँ

राजगुरु की सलाह

धुन का पक्का विक्रमार्क फिर से पेड़ के पास गया। पेड़ से शव को उतारा और उसे अपने कंधे पर डालकर चुपचाप श्मशान की ओर चलता बना। तब शव के अंदर के वेताल ने कहा, "राजन्, मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। मैंने अनेक बार तुम्हें समझाने की कोशिश की कि तुम अपना मूल्यवान समय नष्ट न करो। राजा के निर्दिष्ट कर्तव्य होते हैं। उन कर्तव्यों को पूरा करना उसका धर्म है। परंतु तुम यह सब भूलकर जब देखो, श्मशान में ही पडे रहते हो। क्या यह अनुचित नहीं लगता? राजा कभी-कभी मंत्रियों की सलाहों से भी ज्यादा राजगुरु की सलाह को महत्व देते हैं। ऐसे गुरु कभी-कभी राजा की विनती को टाल न सकने

के कारण कोई न कोई सलाह दे बैठते हैं। मैं तुम्हें विक्रमसेन नामक राजा की कहानी सुनाना चाहूँगा, जिसे उसके राजगुरु ने एक असंबद्ध व हास्यास्पद सलाह दी। अपनी थकावट दूर करते हुए उसकी कहानी सुनो। फिर वेताल राजा और राजगुरु की कहानी यों सुनाने लगा :

उस देश की प्रजा का मानना था कि राजा विक्रमार्क धर्मात्मा है और है कर्तव्यनिष्ठ, इसीलिए वह अपनी प्रजा को अपनी संतान से भी ज्यादा चाहता है। किन्तु उसके पुत्र अवक्रमसेन का मानना था कि उसके पिता उसे दत्तक पुत्र मानते हैं, उनके हृदय में उसके लिए रत्ती भर भी प्रेम नहीं है। परंतु इसके पीछे एक ज़बरदस्त वजह भी थी। यद्यपि युवराज अवक्रमसेन सकल शास्त्रों में पारंगत था, फिर भी उसके पिता हर दिन उसमें कोई न कोई ग़लती ढूँढ निकालते और उसे डाँटते-डपटते रहते थे।

"हर मनुष्य से कोई न कोई ग़लती हो जाती है। आप मुझमें सिर्फ़ बुराई देख रहे हैं, अच्छाई नहीं।" अवक्रमसेन ने अपने पिता से कहा।

"तुम युवराज हो। अगर तुममें थोड़ा-सा ही सही बड़प्पन हो तो तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँधनेवाले कितने ही लोग मिलेंगे। तुम्हारे पिता होने के नाते तुम्हें तुम्हारी ग़लतियाँ बताना मेरा धर्म है। इस ओर ध्यान मत देना कि मैंने तुममें अच्छाई देखी या नहीं। बस, सोचना, मैंने तुममें जो ग़लती ढूँढ निकाली, उसमें सचाई है या नहीं। अगर वह ग़लती सच हो तो अपने को सुधारने की कोशिश करना।" विक्रमसेन ने अपने बेटे को यों समझाया।

दिन गुज़रते गये। एक दिन विक्रमसेन अचानक बीमार पड़ गया। राजवैद्यों ने परीक्षा की और कहा कि दो महीनों तक उसे पूरा आराम करना चाहिए। तब उसने अपने बेटे को बुलाकर कहा, "बेटे, कुछ समय तक तुम्हें ही राज्य-भार संभालना है।"

"मैं तो हर दिन ग़लतियाँ करता रहता हूँ। किसी ऐसे आदमी को चुनिए, जो कोई ग़लती नहीं करता हो। उसे ही यह राज्य-भार सौंपिये।" अवक्रमसेन ने कटु स्वर में कहा।

"बेटे, राज्य का शासन संभालने की क्षमता तुमसे बढ़कर किसी और में नहीं है। इसीलिए मैं यह भार तुम्हें सुपुर्द करने की सोच रहा हूँ। भविष्य

में भी यह भार तुम्हीं को संभालना होगा न।" विक्रमसेन ने उसे यों समझाया और वे सब राजलक्षण बताने लगा, जो उसमें भरे पड़े थे।

पिता की प्रशंसा अवक्रमसेन को बहुत अच्छी लगी। वह खुशी से फूल उठा। उसने फ़ौरन कहा, "अवश्य ही मैं शासन की बागडोर संभालूँगा। इन दो महीनों में साबित करूँगा कि मैं कितना समर्थ हूँ। इन दो महीनों में मुझसे एक भी ग़लती हो जाये तो इस देश का महाराज नहीं बनूँगा।" यों प्रतिज्ञा करके वह वहाँ से चला गया।

महाराज पशोपेश में पड़ गया। उसने राजगुरु को बुलवाया। सारी बातें सुनने के बाद राजगुरु ने कहा, "अवक्रमसेन की बातें और व्यवहार-शैली मुझे अच्छी लगीं। वह ग़लती किये बिना शासन का भार संभालना चाहता है। तुम भी युवराज में ग़लतियाँ निकालने का काम छोड़ दो।"

"गुरुवर, जान-बूझकर युवराज ग़लत क़दम उठाये तो मैं कैसे सह पाऊँगा।" विक्रमसेन ने अपनी चिंता प्रकट की।

इस पर राजगुरु ने हँसकर कहा, "तैरना सीखना हो तो तट पर बैठे रहने से कुछ नहीं होगा। पानी में जाकर अभ्यास करना होगा। निस्संकोच उसकी शर्त व प्रतिज्ञा स्वीकार कर लो। अपना मन प्रशांत रखना। दैव ध्यान और योगनिष्ठा में लगे रहना। इससे तुममें सहनशक्ति बढ़ेगी।"

राजगुरु की बात मानकर विक्रमसेन ने राज्य-भार अवक्रमसेन को सौंप दिया। तब से हर रोज युवराज महाराज को विवरण देता था कि उसने

उस दिन क्या किया और उसका फल क्या निकला। महाराज उसकी दक्षता की भरपूर प्रशंसा करता था। यों दो महीने बीत गये। सबने माना कि अवक्रमसेन समर्थ राजा है। उसने राजगुरु से परामर्श कर अवक्रमसेन का राज्याभिषेक कर दिया।

दो साल गुज़र गये। शासन बड़े ही सुचारू रूप से चलने लगा। कोई ऐसा न था, जो उसकी तारीफ़ न करे। परंतु उसे सन्देह होता था कि उससे छोटी-मोटी त्रुटियाँ हो रही हैं और उन्हें वह समझ नहीं पा रहा है। अपने संदेह की निवृत्ति के लिए उसने अपने अनुचरों से पूछा। मंत्रियों से सलाह माँगी, पिता से बात की, पर किसी ने भी यह नहीं बताया कि उसकी पद्धतियों में अथवा उसकी विचार-शैली में कुछ त्रुटियाँ हैं।

एक दिन उसने अपने पिता विक्रमसेन से कहा, "मेरी बुद्धि परिपक्व नहीं थी। इसलिए मूर्खतावश मैंने इसके पहले आपके सामने एक शर्त रखी, एक प्रतिज्ञा की। मैं अब अपनी ग़लतियाँ जानना चाहता हूँ। इसलिए पूर्ववत् आप मेरी ग़लतियाँ बताते रहियेगा।"

इस पर विक्रमसेन ने कहा, "पुत्र, जब तुममें ग़लतियाँ थीं तब मैंने निस्संकोच बतायीं। तुममें अब ग़लतियाँ हैं नहीं, जो हैं, वे अच्छाइयाँ ही हैं। तुम्हारी शर्त से बद्ध होकर मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ। मेरा विश्वास करो।"

अवक्रमसेन पिता के उत्तर से संतुष्ट नहीं हुआ। वह अपनी माँ के पास गया। उसने माँ से कोई उपाय बताने की जिद की जिससे उसके पिता उसकी ग़लतियाँ बतायें। इसपर माँ ने कहा, "पुत्र, हर मनुष्य कभी न कभी कोई न कोई ग़लती करता है। तुम्हारे पिता मुझे मेरी ग़लतियाँ बताते थे, जिसके कारण मुझे बहुत लाभ पहुँचा। पर इधर कुछ समय से तुम्हारे पिता को मुझमें भी कोई ग़लती दिखायी नहीं दे रही है। अच्छा होगा तुम राजगुरु से सलाह करो।"

अवक्रमसेन ने राजगुरु से मिलकर अपनी समस्या बतायी। थोड़ी देर सोचने के बाद उन्होंने कहा, "जो अपनी ग़लतियों को जानने की तत्परता दिखाते हैं, उसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल होगा। अब तुम्हारी बुद्धि का पर्याप्त विकास हुआ है। परंतु जब इसके पहले तुम्हारे पिता तुम्हारी ग़लतियों की ओर उंगली उठाते थे, तब तुम सह नहीं पाते थे। इसी कारण तुम्हारे अनुचर और मंत्रीगण तुम्हारी ग़लतियाँ बताने में संकोच कर रहे हैं। इसका एक ही उपाय है। तुम्हें अपने पिता से ही अपनी ग़लतियाँ जानना होंगी। यह तभी संभव होगा, जब तुम उन्हें बहुत नाराज़ करोगे।"

पिता को कैसे नाराज़ कर सकते हैं, इसका उपाय अविक्रमसेन ने अपनी माँ से पूछा। उसने बताया, "उनकी हर बात का खंडन करो। देश में जो भी अनर्थ हो रहा है, उसके लिए उनके पूर्वजों को दोषी ठहराओ।"

अविक्रमसेन ने तुरंत माँ की सलाह का पालन किया। चूँकि राजगुरु की भी अनुमति मिल गयी, इसलिए महारानी भी महाराज को नाराज़ करने की कोशिश में लग गयी।

एक तरफ़ बेटा और दूसरी तरफ़ पत्नी

विक्रमसेन को चिढ़ाने लगे। अपने क्रोध पर काबू पाने के लिए महाराज ने योगनिष्ठा भी की, पर उससे भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ। वह घबरा गया और राजगुरु से मिलकर कहा, "गुरुवर, अंतःपुर में रह रहा हूँ, फिर भी अपने क्रोध को नियंत्रण में रख नहीं पा रहा हूँ। मेरा पुत्र बहुत अच्छी तरह से शासन का भार संभाल रहा है। इसलिए लगता है कि वानप्रस्थ स्वीकार करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। किसी पास के अरण्य में जाकर तपस्या करने की इच्छा है।"

राजगुरु ने मुस्कान भरते हुए कहा, "राजन्, इतनी जल्दी वानप्रस्थ स्वीकार करना ठीक नहीं होगा। तुम्हें अपने क्रोध को नियंत्रण में रखने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। अब अपनी योगनिष्ठा छोड़ दो। अंतःपुर में यथावत् सुखी रहो।"

बेताल ने कहानी सुनाने के बाद कहा, "राजन्, विक्रमसेन को दी गयी राजगुरु की सलाह क्या विचित्र नहीं लगती? पहले उन्होंने महाराज को सलाह दी थी कि वह अपने क्रोध पर नियंत्रण रखे और इसके लिए वह योगनिष्ठा को उपयोग में लाये। अब उनका कहना है कि क्रोध को नियंत्रण में रखने की कोई आवश्यकता नहीं। क्या यह असंबद्ध एवं हास्यास्पद सलाह नहीं लगती? मेरे इन संदेहों के समाधान जानते हुए भी चुप रह जाओगे तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।"

विक्रमार्क ने कहा, "अहंकार से भरा अकारण क्रोध सब प्रकार से मनुष्य को हानि पहुँचाता है। परंतु न्यायोचित क्रोध ग़लती नहीं कहलाती। कभी-कभी तो सहनशक्ति के कारण बुराई भी अच्छाई लगने लगती है। अवक्रमसेन हृदय से चाहता है कि अपनी ग़लतियाँ दूसरों से सुनूँ, जानूँ। ऐसी स्थिति में महाराज अगर उसकी ग़लतियों पर प्रकाश डालें तो वह उसके लिए बहुत ही उपयोगी साबित होगा। इसी कारण राजगुरु ने विक्रमसेन को सलाह दी कि अब उसे उसकी सहनशक्ति को बढ़ानेवाली योगनिष्ठा की आवश्यकता नहीं है।

राजा के मौन भंग में सफल बेताल शव सहित ग़ायब हो गया और फिर से पेड़ पर जा बैठा।

(आधार - सुचित्रा की रचना)

भारत की पौराणिक कथाएँ - १२

बालक-राजा के लिए पहेलियाँ

प्रबुद्ध एवं कृपालु काशी-नरेश का जब देहान्त हुआ तब उनका एक मात्र पुत्र केवल सात वर्ष का था। नरेश के व्यक्तिगत सेवक चन्दा को भय था कि राजा के जाने के बाद उसकी देखभाल करनेवाला कोई न होगा। महल में उसका कोई भविष्य न था। इसलिए वह अपने गाँव लौट गया, जहाँ उसका अपना एक घर तथा एक भूखण्ड भी था। वह खेती करने लगा और साधारण पर सुखी जीवन बिताने लगा। गाँव के सभी लोग उसे प्यार करते थे, क्योंकि उसका स्वभाव बहुत अच्छा था और वह कभी झूठ नहीं बोलता था।

एक बार उसके दोनों बैल बीमार पड़ गये। उसने अपने पड़ोसी जगन से बदले में एक माप चावल अग्रिम में देकर एक जोड़ी बैल पैंचा माँगा। उसने सूर्यास्त से पहले उसके बैलों को लौटाने का वादा किया। अपने वचन के अनुसार वह गोधूलि से पहले उसके दोनों बैलों को हाँककर उसके घर ले गया किन्तु जगन को बरामदे में सोया देखकर बिना उसे जगाये बैलों को उसकी गोशाला में बाँध दिया और चुपचाप वापस चला आया। तब तक जगन जाग चुका था और चन्दा को बैलों को गोशाला में ले जाते देख चुका था, लेकिन उससे बात करने के लिए वह उठा नहीं।

संयोग की बात, उसी रात जगन के दोनों बैलों की चोरी हो गई। पहले तो उसने राजा से शिकायत करने का विचार किया। लेकिन बाद में, जैसा कि वह बेईमान था ही, उसने चन्दा से हरजाना लेने का दावा करने का निश्चय किया, क्योंकि वह जानता था कि चन्दा को यह मालूम नहीं है कि मैंने उसे बैलों को वापस करते देखा है। यह अधिक आसान होगा

कि खोई सम्पति की वह चन्दा से क्षतिपूर्ति ले अपेक्षाकृत इसके कि राजा के सैनिकों द्वारा बैलों की खोज-खबर तक वह प्रतीक्षा करता रहे।

अगले दिन जब चन्दा जगन से पुनः बैलों को माँगने गया तो जगन ने आश्चर्य का बहाना बनाकर कहा, "तुमने मेरे बैलों को तो लौटाया नहीं। उन्हें बेच तो नहीं दिया? अब तुम निर्दोष बनने का दिखावा कर रहे हो।"

"लेकिन मैं तो बैलों को तुम्हारी गोशाला में छोड़ गया था। क्योंकि तुम सो रहे थे, इसलिए यह बताने के लिए तुम्हारी नींद खराब करना नहीं चाहता था।" चन्दा ने कहा।

"मुझे झाँसा-पट्टी न दो। जिस प्रकार तुमने मुझसे बैलों को लिया, उसी प्रकार मुझे ही व्यक्तिगत रूप से उन्हें लौटाना तुम्हारा फर्ज था। या तो मेरे बैलों को लौटा दो या उनकी कीमत दे दो।" जगन ने माँग की।

यह बात ग्राम परिषद तक गई। यद्यपि किसी को विश्वास नहीं हुआ कि चन्दा झूठ बोल रहा है, फिर भी बैलों को लौटा देने का कोई प्रमाण नहीं था। बहुत दिनों तक इसका निर्णय न हो सका।

ग्राम परिषद के मुखिया ने सलाह दी कि "मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि हमारे नये राजा बालक होते हुए भी असाधारण रूप से बुद्धिमान और न्यायप्रिय हैं। अच्छा होगा यदि वे ही इस मुकदमे का निर्णय करें।"

चन्दा और जगन दोनों दूसरे दिन राजधानी के लिए चल पड़े। कुछ दूर जाने पर मार्ग में उन्हें कुछ विद्यार्थी मिले। उन्हें जब मालूम हुआ कि ये दो ग्रामीण राजा से मिलने जा रहे हैं तो उन्होंने उनसे

कहा, "हम लोगों ने किशोर राजा की बुद्धिमानी के विषय में बहुत कुछ सुन रखा है। क्या कृपया हमारी समस्या उनके सामने रखकर समाधान के लिए प्रार्थना करेंगे? हम लोग पहले प्रातःकाल बहुत सबेरे उठ जाया करते थे और स्वाध्याय में लग जाते थे। किन्तु पिछले छः महीनों से हम लोग भिन्न-भिन्न समय पर बल्कि देर से उठते हैं। स्वाभाविक ही पहले की भाँति स्वाध्याय में ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते। ऐसा हम लोगों के साथ क्यों हुआ?"

"बकवास! ऐसी मूर्खतापूर्ण समस्या का समाधान भला राजा कैसे दे सकता है?" जगन ने दंभपूर्वक कहा। "मैं राजा के पास इस समस्या को लेकर कभी नहीं जाऊँगा।" "घबराओ नहीं, मैं राजा से इस समस्या का समाधान लाऊँगा।" चन्दा ने कहा।

चन्दा और जगन राजधानी पहुँचकर राजा से उसके दरबार में मिले। बाल राजा ने अपने पिता के

सेवक को तुरंत पहचान लिया। उसे देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। चन्दा ने जगन को राजा के समक्ष अपनी शिकायत रखने को कहा। लेकिन यह सोचकर कि इस असाधारण बालक के सामने हमें झूठ बोलना पड़ेगा, वह घबराने लगा। उसे यह भी मालूम था कि चन्दा ईमानदार है। फिर भी जब जगन ने बैलों के खो जाने की बात बताई तो राजा ने पूछा, "मेरा विश्वास है कि चन्दा को बैल देने से पहले भी तुमने बहुतों को अपने बैल दिये।"

"हाँ, महाराज !" जगन ने कहा। "क्या यह सच नहीं है कि यदि किसी ने संध्या तक बैल नहीं वापस किया तो तुम स्वयं जाकर लाने गये।"

"यह सच है, प्रभु।" "तो चन्दा ने जब बैल नहीं लौटाया जैसाकि तुम्हारा कहना है तो उसके पास जाकर अपने बैलों को वापस लाने में तुम्हें किसने रोका?"

जगन हिचकने और हकलाने लगा और समुचित उत्तर न दे सका। राजा ने कहा, "मैं तुम पर ग्राम परिषद के समक्ष झूठ बोलने, यहाँ पर मिथ्या वचन कहने और एक निर्दोष व्यक्ति को परेशान करने का आरोप लगाता हूँ। तुमने अपने बैलों को वापस लाते देखा, फिर भी दावा किया कि तुमने नहीं देखा। तुम्हारी आँखों का कोई उपयोग न रहा, इसलिए तुम्हारी आँखें निकाल ली जायेंगी।" जगन ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और क्षमा-दान की प्रार्थना की। चन्दा के अनुरोध पर राजा ने उसे माफ कर दिया।

"चन्दा, मेरे पिता की निष्ठापूर्वक जो सेवा की, उसके बदले मैं तुम्हें क्या पुरस्कार दूँ?" राजा ने पूछा। "प्रभु, मेरी इच्छा है कि कुछ विद्यार्थियों द्वारा किये गये प्रश्न का आप समाधान बता दें।" यह कहकर विद्यार्थियों द्वारा पूछा गया प्रश्न उसने राजा के समक्ष रखा।

"मैं समझता हूँ कि उन छात्रों को उस समय जागने की आदत होगी जब कोई कौआ सबेरे-सबेरे काँव-काँव करता था। सम्भवतः वह कौआ अब वहाँ नहीं है। इसलिए वे विलम्ब से उठते हैं। उन्हें कोई और उपाय सोचना चाहिए और सबेरे उठने के लिए संकल्प शक्ति का प्रयोग करना चाहिए।"

वह प्रबुद्ध बालक राजा और कोई नहीं, बल्कि बुद्ध के पूर्व अवतार बोधिसत्त्व थे।

(यह क्रम समाप्त हो गया।)
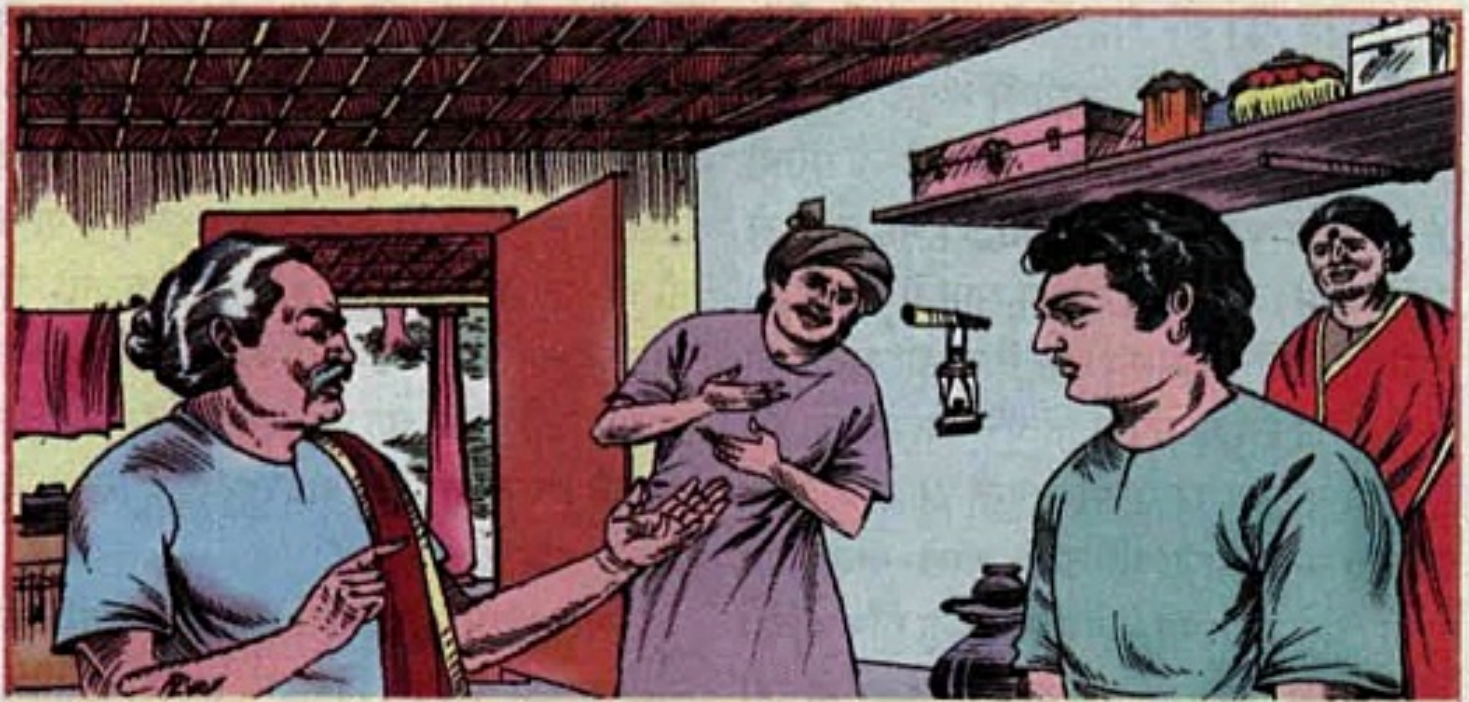
वेषधारी राजा

धूमल ग़रीब था। उसके दो बेटे थे। बड़ा बेटा पिता के कामकाज में हाथ बंटाता था। खुद मज़दूरी करता था और थोड़ा-बहुत कमा लेता था। छोटा बेटा राजा गाँव भर में सिर्फ़ मटरगश्ती करता रहता था।

धूमल ने एक दिन राजा से कहा, "हमने बड़े प्यार से तुम्हारा नाम राजा रखा, पर इसका यह मतलब नहीं कि तुम राजा हो। राजा भी अपनी प्रजा की ज़रूरतें पूरी करते हैं, उनमें जनता की सेवा करने की लगन होती है। तुम अगर हमारे साथ रहना चाहते हो, तो तुम्हें भी अपने बड़े भाई की तरह काम करना होगा। ऐसा न करने पर तुम्हें इस घर में रहने का कोई हक़ नहीं है।" क्रोध-भरे स्वर में धूमल ने कहा।

राजा एकदम नाराज़ हो उठा और घर से बाहर चला गया। अपने आप बड़बड़ाने लगा कि मैं ग़रीब हूँ, पर इसका यह मतलब नहीं कि मेरा नाम राजा नहीं होना चाहिए। यों सोचते हुए वह वहाँ से सीधा राम मंदिर गया।

उस समय मंदिर के चबूतरे पर एक संन्यासी बैठा हुआ था। राजा ने अपना सारा क्रोध उस संन्यासी पर उतारा। उसने संन्यासी से कहा, "मेरा नाम राजा है। मेरे पिता ने मेरे इस नाम को लेकर मेरा मज़ाक उड़ाया। तुमने संन्यासी का वेष धारण कर लिया, परंतु वेष धारण करने मात्र से क्या तुम सच्चे संन्यासी हो गये?"

उसकी बड़बड़ाहट संन्यासी की समझ में नहीं आयी। उसने उसे शांत करने तथा असली बात जानने के उद्देश्य से कहा, "बेटे, राजा अपने ढंग से अपना जीवन बिताता है और संन्यासी

- राजकमल -

अपने ढंग से। पर किसी भी जीवन के लिए चाहिए, तृप्ति। जो है, उसी में संतृप्त रहने की आदत डालनी चाहिए। ऐसा प्राणी है जो ग़रीबी में भी सुख का अनुभव करता है। वह कष्टों से नहीं डरता। हँसते हुए उनका सामना करता है। मुझे दो दिनों का समय दो। मैं तुम्हारे संदेह को दूर करूँगा। मुझे अपना हितचिंतक मानना।''

यों कहकर संन्यासी चबूतरे से उतरा और चलता बना। राजा भी उसके पीछे-पीछे जाने लगा। थोड़े ही समय में वे दोनों पुंगनूर गाँव पहुँचे। उस समय उस गाँव की देवी की पूजा हो रही थी। उस उत्सव में कुछ लोग नाच रहे थे तो कुछ ढोल बजाते हुए उछल-कूद रहे थे।

इस उत्सव की एक विशेषता थी। उस दिन गाँव का एक व्यक्ति राजा का वेष धारण करता था और हाथी पर सवार हो गाँव में घूमता था। लोग भी उसका उतना ही आदर-सत्कार करते थे, जितना एक राजा का किया जाता है।

संन्यासी ने हाथी पर बैठे हुए व्यक्ति को दिखाते हुए राजा से कहा, ''यह उत्सव पहले भी दो बार मैं देख चुका हूँ। राजा बेषधारी की शान ध्यान से देखना। मानव को जो अपने जीवन में प्राप्त नहीं होता, वह उसे दूसरे में देखकर तृप्त होता है। परंतु थोड़ी देर बाद तुम खुद देखोगे कि उसकी क्या हालत है।''

बग़ल ही में खड़ा एक व्यक्ति संन्यासी की बातें सुन रहा था। इस विषय पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से उसने संन्यासी से कहा, ''वर्तमान राजा के पूर्वजों में एक बहुत ही ग़रीब था। उसमें राजा बनने की तीव्र इच्छा थी। कहते हैं कि उसने ऐसे एक उत्सव में राजा का वेष धारण किया और अपनी जीभ में छोटा-सा त्रिशूल चुभोकर देवी के

सामने नाचने लगा। फिर इसके बाद वह राजा बना। इस पुराने आचार को बरक़रार रखने के लिए अब हम एक ऐसे ग़रीब आदमी को चुनते हैं, जो अपनी जीभ में शूल को चुभो सकता हो और देवी की पूजा करता हो।''

राजा ने तुरंत कहा, ''इसमें क्या ग़लती है? धन पाने से सुख मिलता हो तो कुछ भी किया जा सकता है। परन्तु जीभ में शूल चुभोकर राजा बनने की कामना करना सरासर बेवकूफ़ी है।''

संन्यासी ने हँसते हुए कहा, ''उत्सव की समाप्ति के बाद हम उस राजा वेषधारी के घर जायेंगे और उससे पूरी बात जानेंगे।''

फिर वे उस वेषधारी के पीछे-पीछे मंदिर तक गये। मंदिर पहुँचते ही वह वेषधारी हाथी से उतर गया, अपना वेष उतारा और थोड़ी देर तक नाचता रहा। इसके बाद मंदिर के पुजारी ने असली राजा की तरफ़ से भेजी गयी भेंटें उसके सुपुर्द कीं।

दूसरे दिन सबेरे संन्यासी और राजा वेषधारी के घर गये। वह छोटी-सी झोंपड़ी में रहता था। उस वेषधारी का नाम था चंपक। उसने संन्यासी और राजा का सादर स्वागत किया।

चंपक तीस साल का युवक था। वह एक बेटी और एक बेटे का बाप था। उसके माँ-बाप बूढ़े थे। उसकी एक बहन भी थी, जिसकी शादी की जिम्मेदारी उसपर थी। वह मज़दूरी करता था। उसके माँ-बाप इस उम्र में भी कोई न कोई काम करके थोड़ा-बहुत कमा लेते थे। चंपक की पत्नी और उसकी बहन तरकारियाँ बेचती थीं।

चंपक के बार-बार विनती करने पर संन्यासी और राजा ने उसके साथ बैठकर खाना खाया।

चंपक और उसके परिवार के सदस्य उस दिन की कमाई को लेकर आपस में बातें करने लगे। सबने जो मेहनत की और फलस्वरूप जो धन मिला, उसपर वे बहुत खुश दिखायी दे रहे थे। उनका पारस्परिक प्रेम देखते हुए राजा को अपने घर की व अपनों की बहुत याद आयी।

चंपक ने फिर उन दोनों को विशद रूप से बताया कि उसने राजा का वेष क्यों धारण किया। उसने कहा, ''चंद पीढ़ियों के पहले अभी के राजा का पूर्वज हमारी जाति में पैदा हुआ था। कहते हैं कि मैंने जिस प्रकार से कल देवी की पूजा की, उसने भी की थी। फलस्वरूप वह राजा बना। मेरे हृदय के किसी कोने में भी राजा बनने की तीव्र आकांक्षा छिपी हुई है। जीभ में शूल चुभोने की विद्या सीखने में मैंने बहुत तक़लीफ़ें सहीं। उस दौरान मुझे लगा कि कोई उपयोगी काम करूँ और कमाऊँ तो कितना अच्छा होगा। मुझे लगा कि इससे मैं ग़रीबी पर भी विजय पा सकूँगा। इसीलिए हम सब लोग कोई न कोई ऐसा काम करते रहते हैं जिससे हमें ग़रीबी में दिन गुज़ारना न पड़े। जीभ में शूल चुभोने की यह विद्या मैंने अपने बेटे को भी सिखायी।''

राजा ने संन्यासी और चंपक को कृतज्ञता जतायी और घर लौटा। उसे देखते ही सबने बड़े ही प्यार से उससे कहा, ''कहाँ चले गये थे तुम? आगे से कोई काम न भी करोगे तो कोई बात नहीं। हम बुरा नहीं मानेंगे। बस, हमें छोड़कर कहीं मत जाना।''

राजा ने उन्हें संन्यासी व चंपक के परिवार की बातें बतायीं और कहा, ''अब मैं बहुत कुछ जान गया हूँ। जान गया हूँ कि धन के बिना आदमी कुछ नहीं कर सकता। धन पाने के लिए मेहनत करनी चाहिए। मैं यह सचाई पहले जान नहीं पाया। अब पछता रहा हूँ।''

उस दिन से लेकर राजा अपने बाप और भाई के साथ मज़दूरी करने लगा और भरसक कमाने लगा। जितना कमा पाता था, उसी में वह संतुष्ट रहने लगा।

छिद्री थैली

कृष्णापुर गाँव में रामशर्मा नामक एक पंडित रहा करता था। वहाँ के गुरुकुल में वह शिक्षक था। पढ़ाने की उसकी पद्धति बड़ी ही सरल होती थी। कभी भी, किसी भी हालत में वह विद्यार्थियों के साथ सख्ती के साथ पेश नहीं आता था। उन्हें दंड कभी नहीं देता था।

एक दिन एक किसान अपने बेटे दिलीप को लेकर उससे मिलने आया। वह चाहता था कि उसका बेटा उस गुरुकुल में विद्याभ्यास करे। रामशर्मा ने उसकी छोटी-मोटी परीक्षाएँ करके उसे गुरुकुल में भर्ती कर लिया।

कुछ ही दिनों में रामशर्मा ने ताड़ लिया कि दिलीप को पढ़ने-लिखने में कोई दिलचस्पी नहीं है। उसकी व्यवहार-शैली भी शेष विद्यार्थियों से भिन्न होती थी। वह पाठ भी ध्यान से सुनता नहीं था। अक्सर वह पाठ्य पुस्तकें खो बैठता था। व्यायामशाला में झांककर भी नहीं देखता था, पर भोजनालय में सबसे पहले पहुँच जाता था। खूब खाता-पीता था, इसलिए एक साल के अंदर ही वह मोटा हो गया। किन्तु उसकी बुद्धि जैसी थी वैसी ही रह गयी।

रामशर्मा ने बड़े ही मृदु स्वर में उसे समझाया कि शिक्षा का जीवन में कितना बड़ा स्थान है। उसे बताया भी कि अशिक्षित मनुष्य पशु के समान है। पर दिलीप पर गुरु की बातों का कोई असर नहीं हुआ। अब रामशर्मा को लगा कि उसे सुधारना उसके बस की बात नहीं है।

तभी रामापुर का निवासी और रामशर्मा का गुरु उससे मिलने आया। कुशल-मंगल जानने के बाद रामशर्मा ने दिलीप के बारे में बताते हुए कहा, "मैं इसे शिक्षित कर नहीं पा रहा हूँ। मेरी सारी कोशिशें असफल हो गयीं। इसे गाँव वापस भेजने के सिवा कोई रास्ता दिखायी नहीं दे रहा है।"

तब बड़े गुरु ने कहा, "निराश मत होना। ऐसे लोगों को बदलने के छोटे-मोटे उपाय भी हैं। यह कोई ज़रूरी नहीं कि ऐसे लोगों को बदलने

- रामदेव -

के लिए किन्हीं बड़े-बड़े उपायों का सहारा लें। पहले हमें ऐसे प्रयत्न करने चाहिए, जिनसे वह खुद समझ जाए कि उसमें क्या-क्या कमियाँ हैं। अगर इसमें हम सफल न हो पायें तो हमें उसकी व्यवहार-शैली की असहजता पर उसका ध्यान खींचना चाहिए। कुछ भी हो, ग्रंथ विद्या के साथ-साथ अनुभव विद्या की भी नितांत आवश्यकता है।'' फिर रामशर्मा को इसके लिए आवश्यक उपाय भी सुझाये।

दूसरे दिन रामशर्मा ने दिलीप को बुलाया और उससे कहा, ''कल जो बड़े गुरु आये, उन्हें तुमने देखा है न? वे रामापुर में रहते हैं। यहाँ से वह गाँव दूर नहीं है। उनके पास कुछ ऐसे ग्रंथ हैं, जो हमारे पास नहीं हैं। तुम पैदल जाना और बड़े गुरु से उन ग्रंथों को ले आना। रास्ते में खाने-पीने के लिए तुम्हें जो पैसे चाहिए, वे इस थैली में हैं,'' कहते हुए उसने वह थैली उसके सुपुर्द कर दी।

दिलीप खुश होता हुआ बिना कुछ कहे थैली कंधे में लटका ली और रामापुर जाने के लिए निकल पड़ा। रास्ते में एक जगह पर हाट लगी थी। वहाँ उसने खाने-पीने की एक दुकान देखी। उसने चीज़ें खरीदने के लिए गुरु की दी थैली में हाथ डाला। देखा कि थैली में छेद पड़ गये हैं और उसमें एक भी सिक्का नहीं है। उसका चेहरा फीका पड़ गया।

दिलीप की इस हालत को देखते हुए एक आदमी ने कहा, ''वे पैसे रास्ते में गिर गये होंगे। लौटकर जाओ और ढूँढो।''

उस आदमी की सलाह दिलीप को अच्छी नहीं लगी। वह लौटकर जाना नहीं चाहता था। मोटेपन के कारण फिर से उतनी दूर लौटकर जाना उसे संभव नहीं लगा। दुखी होता हुआ वह हाट से बाहर आ गया। तब एक भिखारी उसके सामने आया और भीख माँगते हुए कहने लगा, "साहब, ज़ोर की भूख लगी है। दान दीजियेगा।" यों कहते हुए उसने हाथ फैलाये।

दिलीप ने उससे साफ़-साफ़ कह दिया कि उसके पास देने के लिए कुछ भी नहीं है। फिर भी वह उसके पीछे-पीछे आता रहा। आख़िर वह भी तंग आ गया और दिलीप को गालियाँ देता हुआ चला गया। थोड़ी दूर और आगे जाने के बाद पेड़ों के पीछे से एक घनी मूँछवाला आदमी उसके सामने आ टपका और छुरी दिखाते हुए कहने लगा, "थैली में जो भी है, निकाल और मुझे दे दे।"

दिलीप ने डर के मारे थरथर काँपते हुए कहा, "भाई साहब, इस थैली में कुछ भी नहीं है। वह बिलकुल खाली है। यह छिदरी थैली है।" उसने वह खाली थैली चोर को दिखाई भी। चोर ने ठठाकर हँसते हुए क़हा, "वाह रे वाह! कैसे आदमी हो! छिदरी थैली ढोये जा रहे हो! बड़े अक़्लमंद लगते हो!" कहता हुआ वह पेड़ों के पीछे चला गया।

थोड़ी देर बाद वह आख़िर रामापुर पहुँचा और बड़े गुरु के घर गया। वह मुखद्वार पर यों खड़ा था, मानों वह दिलीप की ही प्रतीक्षा में

हो। बड़े गुरु ने दिलीप को नख से शिख तक ध्यान से देखा और कहा, "लगता है, बहुत थके हुए हो। पहले कुछ खा-पी लो और अपनी थकावट दूर करो।"

ये बातें सुनकर दिलीप की आँखों में आँसू उमड़-उमड़कर आने लगे। उसने गुरु से सारी बातें बतायीं और कहा, "मेरी मुसीबतों की जड़ है, यह छिदरी थैली।"

बड़े गुरु ने प्यार से उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "अरे दिलीप, यह मत समझना कि तुम्हारे गुरु ने जान-बूझकर यह छिदरी थैली तुम्हें दी। उन्होंने तुमसे बताया भी था कि इसमें पैसे हैं। तुम्हें वहीं देख लेना था कि थैली में कितने पैसे हैं। ऐसा करते तो तुम्हें वहीं मालूम हो जाता कि यह छिदरी थैली है। हो सकता है कि छेदों

की वजह से पैसे रास्ते में कहीं गिर गये हों। लौटकर ढूँढते तो अच्छा होता।''

''सोचा तो था गुरुजी। एक ने यह सलाह भी दी। लेकिन पैदल चलने की मेरी आदत नहीं है, तिसपर मैं बहुत थक भी गया था। वापस जाने की मेरी इच्छा नहीं हुई।''

''देखा ! व्यायामशाला जाते, कसरत करते तो यह नौबत नहीं आती। यह थकावट महसूस नहीं करते। कम से कम आगे से ही सही, कसरत करते रहना।'' बड़े गुरु ने कहा। ''ज़रूर, ऐसा ही करूँगा गुरुजी !'' दिलीप ने सिर झुकाकर कहा।

उसे फिर से ध्यान से देखते हुए बड़े गुरु ने दिलीप से कहा, ''हालांकि एक साल से गुरुकुल में हो, फिर भी तुम्हें पढ़ना-लिखना नहीं आया। लगता है थोड़ा-बहुत लोकज्ञान भी तुमने नहीं सीखा। जब तुम्हें मालूम हो गया कि यह थैली छिदरी है तो तुम्हें इसे फेंक देना था। ऐसा करते तो न ही भिखारी तुम्हें तंग करता और न ही चोर तुम्हें डराता-धमकाता।''

फिर बड़े गुरु ने उसे पास की मेज़ पर बैठने को कहा और खुद उसके सामने की कुर्सी पर बैठ गया और कहा, ''आज तुमने जितनी भी मुसीबतों व समस्याओं का सामना किया, उसका कारण है, तुम्हारी नादानी व मूर्खता। गुरु से विद्या सीखने की आदत डालो। जो शिक्षा पाते हो, उसे सार्थक बनाने की लगन और धुन तुममें होनी चाहिए। तब ज्ञान की प्राप्ति आप ही आप हो जायेगी। जानते हो, हनुमान समुद्र को लांघने की सोच रहे थे, पर इसके लिए राम ने नाव का प्रबंध करके सहायता नहीं पहुँचायी।''

इतना सब कुछ सुनने के बाद अब दिलीप को अपनी कमियों का ज्ञान हो गया। बड़े गुरु के दिये ग्रंथों को लेकर वह खुशी-खुशी गुरुकुल पहुँचा। रामशर्मा को यह जानने में देर नहीं लगी कि दिलीप सुधर गया। बड़े गुरु की सलाह के मुताबिक उपयोग में लायी गयी छिदरी थैली, भिखारी व चोर के काम ने कमाल कर दिखाया।

रेशमी रास्ते

जब तुम रेशम के बारे में सोचते हो तो भारत के किन भागों का ध्यान तुम्हारे मन में आता है? काँचीपुरम, मैसूर, मुर्शिदाबाद, बाराणसी, कश्मीर ...? अब इस पर मनन करो : भारत में इन स्थानों का परम्परागत रेशम उद्योग गुजरात के रेशम बुनकरों से आरंभ हुआ। दक्षिण, मुर्शिदाबाद और बाराणसी के रेशम बुनकर वास्तव में अतीत के सौराष्ट्र के बुनकरों के साथ अपना संबंध जोड़ सकते हैं। एक शिलालेख के अनुसार, चौदहवीं शताब्दी में उस क्षेत्र के एक रेशम शहर में एक बहुत बड़े अग्निकाण्ड के कारण रेशम बुनकरों के बड़े समूह और उनके परिवार के लोग गुजरात से बाहर चले गये। लेकिन अन्य अभिलेखों से पता चलता है कि रेशम बुनकर और पहले ही ८वीं शताब्दी में राज्य छोड़ कर चले गये थे।

धरना

जब तुम्हारी माँग की सुनवाई नहीं हो रही है और जब तुम अपनी बात किसी से मनवाना चाहते हो तभी *धरना* अथवा *घेराव* होता है। तब तक भूखा रहकर या किसी के द्वार पर बैठकर जब तक वह झुक न जाये अपनी माँग पूरी करवाने के लिए यह एक प्रविधि है। और यदि तुम समझते हो कि यह कोई नई धारवाली प्रविधि है तो इस विचार को निकाल दो। भारतवासी, भगवान जाने, कितनी शताब्दियों से धरना दे रहे हैं। प्राचीन विधि ग्रंथ तथा वैधिक प्रणालियों के इतिहास में *घेराव* का वर्णन है जिसे तब *अचारिता* भी कहा जाता था। इन मूल ग्रंथों के अनुसार केवल सामान्य व्यक्ति ही नहीं, बल्कि राजा, मंत्री तथा दरबारी लोग भी अपनी माँग मनवाने के लिए इस तरीके को अपनाते थे। *धरना* के लिखित प्रमाणों के अनुसार इसकी प्रविधियों में शामिल हैं - जम कर बैठ रहना, उपवास, यहाँ तक कि आत्म-दाह भी।

झारखण्ड की एक लोक कथा

झारखण्ड भारतीय संघ में युक्त किया जानेवाला नवीनतम राज्य है। इसका गठन १५ नवम्बर २००० को किया गया। बिहार से छोटा नागपुर पठार तथा संथालपरगना को निकाल कर इनके सम्मिलित क्षेत्र को झारखण्ड राज्य का नाम दिया गया। इसका क्षेत्रफल ७९ हजार ७१४ वर्ग किलोमीटर है। यहाँ की जनसंख्या सन् २००१ की जनगणना के अनुसार २ करोड ६९ लाख ९ हजार ४२८ है। जनसंख्या की दृष्टि से झारखण्ड का भारत के राज्यों और संघीय क्षेत्रों में १३वाँ स्थान है।

झारखण्ड, पूरब में पश्चिम बंगाल से, पश्चिम में छत्तीसगढ़ से, दक्षिण में उड़ीसा से तथा उत्तर में बिहार से घिरा हुआ है। लोहरदग्गा को छोड़कर, राज्य के अन्य सभी २१ जिलों की सीमाएँ पड़ोसी राज्यों को स्पर्श करती हैं।

बिहार की कभी ग्रीष्म की राजधानी राँची अब झारखण्ड की राजधानी है। संथाली, हिन्दी तथा उर्दू राज्य की मुख्य भाषाएँ हैं। अन्य आदिभाषी भाषाएँ हैं - मुंदरी, कुरुख, खोरथा, नागपुरिया, सदरी, खड़िया, पंचपरागनिया, हो तथा माल्टो।

सिंगी बोंगा का विशेष उपहार!

एक समय संसार के सृष्टिकर्ता - सिंगी बोंगा ने पृथ्वी की रचना करने का निश्चय किया।

इसके साथ उसने नर-नारियों, पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों की भी सृष्टि की।

इसके साथ ही बनाया उसने सिंगी अथवा सूरज।

अपने ऊपर जिसका नाम रखा, सिंगी, सबसे अनूठी रचना थी।

यह सबको प्रकाश और गरमी देने लगा।

यह पौधों, फसलों को बढ़ने में मदद करने

लगा। इसकी मदद से फूल खिलने लगे, फल पकने लगे। इसने खेतों, चरागाहों को हरा-भरा कर दिया। इसके कारण वर्षा होने लगी।

प्रत्येक के लिए पर्याप्त भोजन होने लगा। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न था।

सिंगी बोंगा संतुष्ट होकर मुस्कुराया।

सिंगी पूरा दिन चमकता रहता। यह कभी नहीं अस्त होता था। इसलिए हर समय दिन ही दिन रहता था, कभी रात नहीं आती थी। जब तक थक कर चूर नहीं हो जाते, लोग काम करते रहते थे। काम और आराम के लिए कोई निर्धारित समय न था। प्रत्येक व्यक्ति जब मन होता तो काम करने लगता, जब मन होता तो सो जाता। और जब भूख लगती तो खाना खा लेता।

एक दिन सिंगी बोंगा पृथ्वी पर भ्रमण करने आया। उसने होरो को खेतों पर काम करते देखा।

"तुमने इस खेत को कब जोता?" उसने एक से पूछा। "आज," उस आदमी ने उत्तर दिया। "तुमने उस गड्ढे को कब खोदा?" "आज," दूसरे आदमी ने उत्तर दिया। "और उस बाग को कब तैयार किया?" "आज ही बेशक," तीसरे ने चकित होकर कहा। "क्यों पूछते हो? केवल आज ही तो है। जो कुछ हुआ है, आज ही हुआ है। कुछ और कैसे हो सकता है?"

सिंगी बोंगा आगे चलता गया। उसने एक बच्चे के साथ एक स्त्री को देखा।

"इस बालक का जन्म कब हुआ?" उसने माँ से पूछा। "आज," स्त्री ने उत्तर दिया।

"और तुम्हारी बेटी, जो काफी बड़ी लगती है - कब पैदा हुई?"

"आज," स्त्री ने फिर कहा। "क्यों पूछते हो?"

इस बार सिंगी बोंगा चकित नहीं हुआ। वह समझ गया कि क्यों हर प्रश्न के उत्तर में वे 'आज' कहते हैं।

लोगों को समय का बोध नहीं था, क्योंकि रात-दिन में समय का विभाजन नहीं था। केवल एक... दिन था।

सिंगी बोंगा ने इसके लिए कुछ करना चाहा। उसने सिंगी को बुलाकर कहा, "तुम्हें शामको अस्त हो जाना चाहिए और प्रातःकाल पुनः उदय हो जाना चाहिए। तब लोग अंधेरा होने पर काम करना बंद कर देंगे और जान जायेंगे कि अब सोने का समय है। जब तुम फिर से उदित हो

थे। अब उन्हें थक कर चूर-चूर हो जाने तक काम करने की जरूरत नहीं थी। अंधेरा होते ही काम करना बंद कर देते थे। विश्राम के लिए उनके पास अब नियमित समय था। पहले से वे बेहतर महसूस करने लगे।

लेकिन फिर भी एक बड़ी समस्या थी। वे सूर्यास्त के बाद अंधेरे में कुछ नहीं देख पाने के कारण प्रायः गिर पड़ते। बेशक *इपिल* अथवा सितारेगण तो थे, किन्तु उनका प्रकाश काफी न था। वे गड्ढों में गिर पड़ते, पेड़ों अथवा अन्य लोगों से टकरा जाते। कहाँ क्या चीजें रखी हैं, वे देख नहीं पाते और वे उनसे टूट जातीं। सब

जाओगे तो वे समझेंगे कि यह दूसरा दिन है। एक भिन्न दिवस।"

सिंगी सहमत हो गया। संध्या होने पर सूरज डूब गया। सारा संसार अंधकारमय हो गया। लोगों को पता नहीं चला कि क्या हो गया, अंधेरा क्यों छा गया। वे डर गये और इधर-उधर भागने लगे। कुछ लोग गिर पड़े। कुछ लोग गड्ढों में गिरकर घायल हो गये। पेड़ों पर खेलते हुए बच्चे नीचे गिर पड़े। स्त्रियों के हाथ के बर्तन टकराकर टूट गये। किसी को समझ में नहीं आया क्या करें।

अंत में उनके नेता ने बताया, "लेट कर आराम करो। अंधकार में कुछ नहीं कर सकते।" इस प्रकार रात्रि विश्राम के लिए बन गई। जब आसमान में सूरज उगा, सब फिर से उठ गये।

कुल मिलाकर लोग पहले से अधिक खुश

प्राकृतिक साधन

झारखण्ड का अर्थ है - जंगल का प्रदेश। यह राज्य पठार है और समुद्रतल से ९१५ मी. ऊँचा है। यह पठार घने जंगलों से ढका पर्वतीय शृंखलाओं से भरा हुआ है। अनेक नदी-नाले इस पहाड़ी क्षेत्र एवं इसकी घाटियों से होकर बहते हैं।

झारखण्ड में कच्चा लोहा, कोयला, अबरक, बॉक्साइट, ताम्बा, क्रोमाइट, चूना, सोना, अल्मिनियम, चीनी मिट्टी तथा सिलिका जैसे खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। भारत के कुल भण्डार का ३७.५ प्रतिशत कोयला, ४० प्रतिशत ताम्बा, २२ प्रतिशत कच्चा लोहा तथा ९० प्रतिशत अबरक झारखण्ड में पाया जाता है।

आदिवासियों का घर

राज्य अनेक आदिवासियों का गेह है। राज्य की ३० प्रतिशत आबादी आदिवासियों का प्रतिनिधित्व करती है। झारखण्ड में लगभग ३० आदिवासी जातियाँ निवास करती हैं। ये आदिवासी न केवल मुख्य भूमि के निवासियों से भिन्न हैं, बल्कि एक दूसरे आदिवासियों से भी अलग-अलग होते हैं। मुख्य आदिवासी जातियों में कुछेक हैं - संथाल, उराँव, मुण्डा, खड़िया, हॉस, चिरो, खेरवाड़, कोरवा और बिहोर।

आदिवासी समुदाय में कला और हस्तशिल्प की एक समृद्ध परम्परा है। पाँच हजार वर्ष पुराना शिला चित्रकारी इसका प्रमाण है। राज्य में प्रचलित कुछ आदिवासी चित्रकला शैलियाँ हैं - संथाली भित्ति चित्र, उराँव भित्ति चित्र तथा जाडो पटिया।

कुछ अस्त-व्यस्त हो गया।

तब सिंगी बोंगा फिर एक बार उनसे मिलने आया। "अच्छ," उसने पूछा, "क्या पहले से अब बेहतर हो, क्योंकि अब तुम्हारे पास काम करने के लिए दिन और विश्राम के लिए रात है। रात भर विश्राम के बाद क्या ताजा अनुभव करते हो?"

"ओह जी हाँ!" उन सबने कहा, "सुबह हम ताजा अनुभव करते हैं। लेकिन अन्धकार होते ही हम कुछ देख नहीं पाते। हमें चोट लग जाती है। चीजें खो देते हैं, तोड़ देते हैं। अंधेरा होने पर कठिनाई बद जाती है। क्या हमें रात को भी सिंगी नहीं मिल सकता? प्रकाश के बिना कुछ करना कितना मुश्किल हो जाता है!"

"नहीं।" सृष्टिकर्ता ने कहा, "तुम्हें सिंगी नहीं मिलेगा। उसे, जैसा मैंने कहा है, हरेक शामको अस्त होना होगा। लेकिन मैं तुम्हें कुछ और दूँगा। कुछ और जिसमें कम प्रकाश होगा। तुम देख तो पाओगे परंतु काम नहीं कर सकोगे। उसमें से सुंदर शीतल आभा निकलेगी जो हर चीज को आसान कर देगी और दुर्घटना होने से बचायेगी। तुम्हें चन्दू दिया जायेगा।"

और तब उसने चाँद की रचना की। यह आसमान में उगा और शीतल प्रकाश देने लगा। लोग हर चीज देख सकते थे, लेकिन उसके प्रकाश से आँखों को कष्ट नहीं होता था। और न नींद में रुकावट या बाधा होती थी। दिन में सिंगी और रात में चन्दू के साथ जीवन सुखी था! इस प्रकार चाँद की सृष्टि हुई।

- स्वप्ना दत्ता

समाचार झलक

एक १२ वर्षीय अपना प्रबंध स्वयं करता है

दक्षिण-पश्चिम लन्दन का निवासी रूफ़स पोलैक (१२) ने एक दिन स्कूल से लौटकर देखा कि उसकी माँ जिल पार्कर (५३) घर पर नहीं है। वह उस दिन, और अगले दिन और अगले १२ दिनों तक नहीं लौटी। वह बालक १५ दिनों तक हर रोज यह आशा करता रहा कि शामको आज उसकी माँ घर पर होगी। कार्यालय में महिला की सहकर्मी ने उसकी लम्बी अनुपस्थिति को बुरा समझकर उसका पता लगाया। तभी उसे और सारी दुनिया को मालूम हुआ कि इतने दिनों से लड़का अपना प्रबंध स्वयं कर रहा है। उसके मन में यह विचार कभी नहीं आया कि उसकी माँ खो गई है। इसलिए उसने पुलिस को सूचना नहीं दी। महिला को घर के पास एक होटल में पाया गया और उस पर अपने बच्चे की उपेक्षा का आरोप लगाया गया।

रेलगाड़ी जो तैरती है!

चीन के सबसे अधिक घनी आबादी के शहर शंघाई में जर्मनी निर्मित द्रुततम ट्रेन 'मागलेव' इसके वित्तीय जिला पुडॉग से ३१ किलोमीटर दूर हवाई अड्डे तक गई और ४०० किलोमीटर प्रति घण्टे के हिसाब से १४ मिनट में वापस लौट आई। उस पर सवार थे चीन के प्रधान मंत्री झू रोंगजी और उनके जर्मन समकक्ष चांसलर गर्हड श्रोडर। चुम्बकीय रूप से आकाशगामी रेलपथ ट्रैक से कुछ मिलीमीटर ऊपर हवा में तिरता है। हवाई अड्डे तक आने जाने में टैक्सी सवारी को एक घण्टा लगता है।

अपनी नाराज़गी, अपना दुश्मन

मदन हमेशा नाराज़ रहता था। सब उसे समझाते थे कि इतनी नाराज़गी अच्छी नहीं, वह तुम्हें ही नुक़सान पहुँचा सकती है, पर वह किसी की नहीं सुनता। सब लोग कहा करते थे कि उसके माँ-बाप के लाड़-प्यार ने ही उसे बिगाड़ दिया। इसलिए मदन के माँ-बाप ने ठान लिया कि अब उसके साथ सख़्ती करनी होगी।

उस दिन सवेरे मदन जैसे ही जागा, उसने माँ से कहा, ''मुझे बड़ी भूख लगी है। खाने के लिए तुरंत कुछ बनाओ। मेरे दोस्त गाँव के बाहर नहर के किनारे मेरा इंतज़ार करते होंगे।''

''सवेरे-सवेरे वहाँ जाने की क्या ज़रूरत है! घर के पिछवाड़े में जाकर पौधों को पानी दो। तभी कुछ खाने को दूँगी,'' माँ ने कहा।

माँ की इन बातों पर मदन नाराज़ हो उठा। उसने तैश में आकर कह दिया, ''आज पूरा दिन घर में कुछ खाऊँगा ही नहीं।'' बेचारी माँ घबरा गयी और दीन स्वर में कहने लगी, ''इतना नाराज क्यों होते हो? अभी नाश्ता बनाती हूँ। अब कुछ काम करने के लिए तुमसे कभी नहीं कहूँगी।''

पर मदन अपनी जिद पर अड़ा रहा। दुखी होती हुई उसने यह बात अपने पति से कही। वह चिढ़ता हुआ बोला, ''तुम्हारी ही वजह से वह दिन ब दिन बिगड़ता जा रहा है। घर का कोई भी काम नहीं करता। जब तक वह पौधों को पानी नहीं देता, उसे खाना मत खिलाओ।''

मदन ने पिता की बातें सुन लीं। वह और ज़्यादा नाराज़ हो उठा। वह वहाँ से तुरंत चला गया। जब वह नहर के किनारे पहुँचा तब वहाँ उसका एक ही दोस्त बैठा हुआ था और वह गुड़ के साथ चिड़वा खा रहा था।

- समीर -

मदन ने उससे कहा, "मैं भूखा हूँ। मुझे भी थोड़ा खाने को दो।"

"देखो, मैं भी बहुत भूखा हूँ। यह मेरे लिए ही काफ़ी नहीं होगा," दोस्त ने उसे देने से इनकार करते हुए स्पष्ट कह दिया।

मदन ने नाराज़ होते हुए कहा, "जा, जा, आगे से तुमसे बात नहीं करूँगा।"

इतने में और दोस्त भी आ गये। वे घर से ही खाकर आ गये थे, इसलिए कुछ नहीं लाये।

मदन उन सब पर नाराज़ हो उठा। उसने देखा कि एक बूढ़ी औरत एक पेड़ के नीचे पकौड़ियाँ पका रही है। वहाँ जाकर उसने पकौड़ियाँ माँगी, पर उसने कहा, "पैसे देने पर ही दूँगी। मैं यहाँ बेचने आयी हूँ, दान देने नहीं।" उसने उसकी टोकरी को लात मारना चाहा। पर बूढ़ी का पालतू कुत्ता भौंकने लगा। मदन डरकर भाग गया।

रास्ते में एक किसान ने उसे रोका और पूछा, "क्यों इस तरह भागे जा रहे हो?"

मदन ने किसान से अपनी भूख की कहानी सुनायी। तब किसान ने हमदर्दी जताते हुए कहा, "मेरे खेत में बैंगनों का ढेर लगा हुआ है। उनमें से बड़े और छोटे बैंगनों को अलग-अलग कर दो। फिर तुम्हें पेट भर खिलाऊँगा।"

"अपने ही घर में मैं काम नहीं करता। फिर तुम्हारे खेत में काम क्यों करूँगा? मुझसे काम करने के लिए कहने की तुम्हारी यह हिम्मत!" कहते हुए उसने एक छोटा-सा कंकड़ उठाया और किसान पर फेंककर भाग गया।

यों मदन शाम तक किसी न किसी से झगड़ता ही रहा। उसे अब और ज़्यादा भूख लगने लगी। पर वह करे भी क्या? चलता हुआ वह आख़िर गाँव के बाहर के एक आश्रम में पहुँचा। इस आश्रम के संस्थापक श्रीकृष्णानंद स्वामी लोगों को हित बोध करते और ग़रीबों को हर दिन अन्नदान करते थे।

मदन ने श्रीकृष्णानंद स्वामी के पास जाकर अपनी कहानी सुनायी और खाने के लिए माँगा। स्वामी ने उसका कंधा थपथपाते हुए कहा, "अंधेरा होने पर ही अन्नदान शुरू होता है। तब तक मेरे नीति-बोध ध्यान से सुनो।"

मदन बहुत नाराज़ हुआ, पर कहीं और जाने के लिए उसमें शक्ति नहीं रही। इसलिए चुपचाप

स्वामी का प्रवचन सुनने लगा। थोड़ी देर बाद भूख के मारे कराहता हुआ वह बेहोश हो गया।

स्वामी के शिष्यों ने उसके चेहरे पर पानी छिड़का। श्रीकृष्णानंद स्वामी ने प्यार से उसकी पीठ थपथपायी और फ़ौरन उसके भोजन की व्यवस्था की। भरपेट खाना खिलाने के बाद स्वामी ने पूछा, ''मदन, अब क्या तुम्हारी भूख मिट गयी?'' मदन ने बड़ी खुशी से सिर हिलाया। तब स्वामी ने उससे कहा, ''तुम्हारी नाराज़गी ही तुम्हारा दुश्मन है। बिना किसी कारण के तुम अपनी माँ पर नाराज़ हुए। इस नाराज़गी ने तुम्हें दिन भर भूखा रखा। उसी कारण तुमने अपने दोस्तों से भी झगड़ा मोल लिया। इन सबकी जड़ तुम्हारी नाराज़गी है। नाराज़गी से अपने को हमेशा दूर रखो।''

मदन ने अपनी ग़लती मानते हुए कहा, ''मुझसे बड़ी भूल हो गयी। मेरे माँ-बाप मेरे लिए परेशान होंगे।'' वह रोने लगा।

स्वामी ने उसे ढाढ़स बंधाते हुए कहा, ''मैंने तुम्हारे माता-पिता को तुम्हारा कुशल समाचार भेज दिया। इसलिए तुम्हारे बारे में वे घबराते नहीं होंगे। अभी भी, देर नहीं हुई। नाराज़गी छोड़ दो और विवेकी बनो। अन्यथा तुम्हारी नाराज़गी ही तुम्हारे जीवन का सर्वनाश कर देगी।'' फिर स्वामी ने एक शिष्य के साथ उसे उसके घर भेज दिया।

दूसरे दिन मदन अपने दोस्तों से मिला और उन्हें लेकर स्वामी के नीति बोध सुनने के लिए आश्रम में गया। वे ''अपनी नाराज़गी अपना दुश्मन'' पर प्रवचन दे रहे थे। साथ ही मदन की कहानी भी रोचक ढंग से उन्होंने सुनायी।

''मैं समझ बैठा था कि कहानियाँ सिर्फ कहानियाँ ही होती हैं। पर अब समझ गया हूँ कि वे नित्य जीवन सत्य हैं,'' मदन ने अनुभव किया। उस दिन से वह हर रोज नीति भरी कहानियाँ श्रद्धापूर्वक सुनता और उन पर मनन करता। धीरे-धीरे उसकी व्यवहार-शैली में परिवर्तन होता गया। घर के और बाहर के सब लोग मुक्त कंठ से कहने लगे, ''मदन अच्छा लड़का है।''

अपने भारत को जानो

जब से भारत ने आजादी अर्जित की है, देश ने अनेक क्षेत्रों में नेतृत्व किया है और अनेक उपलब्धियाँ हासिल की हैं। इस महीने से, विविध प्रसंगों और विषयों से संबंधित प्रश्नोत्तरी के माध्यम से यह जानने की कोशिश करेंगे कि वे क्या-क्या हैं।

१. भारत के आण्विक ऊर्जा आयोग का पहली बार नेतृत्व किसने किया?

२. दादा साहेब फाल्के एवार्ड कब संस्थापित किया गया? इस पुरस्कार को प्राप्त करनेवाला पहला व्यक्ति कौन था?

३. अंटार्टिका के अभियान पर जानेवाले वैज्ञानिकों के प्रथम भारतीय दल का नेतृत्व किसने किया? वे बर्फीले महादेश में कब पहुँचे?

४. नवम्बर १९८९ में एक भारतीय दल ने हिमालय पर पर्वतारोहण किया। इस अभियान की विशिष्टता क्या थी?

५. सन् १९८९ में एशियन स्नूकर चैम्पियनशिप को जीतने वाला प्रथम भारतीय कौन था?

६. दो प्रकृतिवादियों को उपनाम दिये गये - 'पक्षी मानव' और 'सर्प मानव'। उनके नाम बताओ।

७. मुद्रा की दशमलव प्रणाली कब से लागू की गई?

८. वह कौनसी घटना थी जिसके कारण विश्व का ध्यान सन् १९५३ में भारत पर केंद्रित हो गई?

९. पराक्रम के लिए भारत का उच्चतम पुरस्कार क्या है?

१०. एक विख्यात भारतीय टेनिस खिलाड़ी को यूनेस्को द्वारा 'मे न फेयर प्ले ट्राफी' से पुरस्कृत किया गया। उसका नाम बताओ।

(उत्तर अगले महीने में)

मार्च २००३ प्रश्नोत्तरी के उत्तर

१. हनुमान, परशुराम, महाबली, व्यास, विभीषण, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा

२. कुबेर

३. छाया

४. आम्र फल

५. शान्तनु और भीष्म

६. सर्वदमन

७. शिखण्डी

८. वे सब सूर्यवंशी थे

९. कुन्ती - पार्थ या अर्जुन की माता

विघ्नेश्वर

अगस्त्य के मन में यह इच्छा अधूरी ही रह गई कि वातापि नगर के बीच जो महाशिला है, उसे विघ्नेश्वर की मूर्ति का रूप दिया जाये। लोपामुद्रा चित्रकला में बड़ी निपुण थी। उसने महाशिला की जांच करके उस शिला की प्रकृति के अनुरूप विघ्नेश्वर का एक रेखा-चित्र तैयार किया।

रेखा-चित्र तो तैयार हो गया, मगर उसके अनुरूप महाशिला में विघ्नेश्वर की प्रतिमा को गढ़ सकने वाले शिल्पी बड़ी कोशिश के बावजूद नहीं मिले । अगस्त्य चिंतित हो महाशिला के सामने बैठकर लोपामुद्रा के चित्र और सामने स्थित शिला को देखते हुए वक़्त गुजारने लगे।

जो भी शिल्पाचार्य वहाँ पर आये, वे उस चित्र को देख यह कहते लौट गये, ''ऐसी प्रतिमा तो देव शिल्पी विश्व कर्म या दानव शिल्पी मय के द्वारा ही संभव है। दूसरों के द्वारा नहीं।''

शिल्पियों ने महाशिला पर अपनी छेनियाँ चलाकर कहा, ''यह तो वज्र पाषाण है, इसे गढ़ने के लिए साधारण छेनी काम नहीं दे सकती। वज्र से निर्मित छेनी की ज़रूरत है। देवता या यक्ष लोग ही इसे गढ़ सकते हैं, मानव के लिए नामुमक़िन है।''

उस समय देव शिल्पी विश्व कर्म की पत्नी विश्वकला जो विष्णु की मानस पुत्री है, रूठ कर अपने मायके चली गई थी। इस वजह से विश्व कर्म का मन चंचल था। दानव शिल्पी की अप्सरा पत्नी हेमा उसे छोड़ देवलोक में चली गई थी, इसलिए वह पागल बनकर भटक रहा था। इसलिए उन्हें बुला भेजना भी निरर्थक था।

इस कारण अगस्त्य की यह कामना एक

समस्या बनकर रह गई। अन्न-जल त्याग कर वे रात-दिन उस शिला के सामने बैठे विघ्नेश्वर का ध्यान करने लगे, "गणपति देव, आपने मेरी कामना की पूर्ति नहीं की। अब यह जिम्मेदारी आप ही की है।"

यों ध्यान करते अगस्त्य चारों तरफ़ अपनी नज़र दौड़ाते थे। संयोग से एक दिन शामको तोंदवाला एक बालक उधर से आ निकला। उस के हाथ में छेनी जैसी कोई चीज़ चमक रही थी। वह शिल्पी जैसा लग रहा था।

अगस्त्य ने ध्यान से छेनी की ओर देखा, वह चीज़ हाथी दाँत की बनी थी। उस तरुण शिल्पी ने अगस्त्य के समीप जाकर पूछा, "महर्षि, महाशिला के सामने बैठकर कोई मंत्रणा करते दीख रहे हैं। मैं तो काम की खोज में इधर चला आया हूँ।"

शिल्पी की मीठी बातों ने अगस्त्य के अन्दर गुदगुदी पैदा कर दी। उन्होंने उत्साह में आकर कहा, "महाशिल्पी, बहुत समय से मेरी यह कामना रही है कि इस महाशिला को गणपति देव की मूर्ति के रूप में देखूँ।" इन शब्दों के साथ अपने पास स्थित रेखा-चित्र को शिल्पी को दिखाते हुए पूछा, "तुम कौन हो? क्या करते हो?"

"मेरा पहला काम है भर पेट भोजन करना और दूसरा मूर्तियाँ गढ़ना। मुझे बाल शिल्पाचार्य कहते हैं।" बाल शिल्पी ने अपना परिचय दिया।

इस पर अगस्त्य ने शिल्पी की ओर शंका भरी दृष्टि दौड़ाकर कहा, "इस महाशिला को महान शिल्प का रूप दे सकनेवाले महाशिल्पी के इंतज़ार में मैं बैठा हुआ हूँ। तुम तो बालशिल्पी हो, पर यह शिला बड़ी भारी है। तुम नाटे भी हो। ऐसी हालत में मैं तुमसे यह कैसे पूछ सकता हूँ कि क्या तुम इस महाशिला को गणपति देव की प्रतिमा का रूप दे सकते हो?"

बालशिल्पी मुस्कुराकर बोला, "मैं भले ही बालशिल्पी हूँ, पर मेरी छेनी के लिए कोई असंभव कार्य नहीं है।" यों जवाब देकर बालशिल्पी ने महर्षि को अपनी छेनी दिखाई। वह चम-चम करते वज्र की भाँति दमक रही थी।

इसके बाद अगस्त्य के सामने ही बाल शिल्पी ने छेनी को महाशिला की ओर फेंक दिया। छेनी की नोक के आघात से बिजली जैसी कौंध और बादलों के गर्जन जैसी आवाज़ हुई। साथ ही शिला के मध्य भाग में एक छेद बन गया।

"यह तो नाभिस्थान है। मूर्ति-शिल्प के लिए नाभिस्थान अत्यंत मुख्य है। तिस पर लंबोदर

की नाभि। इसका मतलब है कि नाभि के साथ प्रतिमा का प्रारंभ हो रहा है।'' यों बाल शिल्पी कह रहा था तभी शिला के भीतर से 'लंबोदर लक्ष्मीकर' कहते मालव राग में मधुर गीत अगस्त्य को सुनाई पड़ा।

''यह चुंबक शिला है। मूर्ति के गढ़ते वक़्त इसके अंदर से प्रचंड बिजली निकलेगी। इसलिए इस प्रतिमा के समाप्त होने तक इसके आसपास किसी को पहुँचना नहीं चाहिए। उस वक़्त भयंकर ध्वनि भी सुनाई देगी। इसलिए नगर वासियों को घबराने की कोई जरूरत नहीं है। हे महर्षि, अब आप जाकर निश्चिंत सो सकते हैं। सबेरे तक मूर्ति बनकर तैयार हो जाएगी।'' बाल शिल्पी ने जवाब दिया।

अगस्त्य को आश्चर्य हुआ। उनके चित्त को लगा कि वे निद्रा में डूबते जा रहे हैं। थोड़ी देर बाद संभल कर रेखा-चित्र बाल शिल्पी के हाथ में देने को हुए। इस पर उसने कहा, ''इसके पूर्व ही आपने दिखा दिया है न? एक बार देख लेना मेरे लिए पर्याप्त है। बार-बार चित्र को देखकर शिल्प गढ़नेवाला महाशिल्पी मैं नहीं हूँ। शिल्प को एक खेल मात्र मानकर गढ़नेवाला एक बालशिल्पी हूँ। प्रतिमा के समाप्त होने पर चित्रकार से कह दीजिए, वह स्वयं आकर देख ले कि मेरी प्रतिमा रेखा-चित्र के अनुरूप बन पड़ी है या नहीं। मैं नहीं जानता कि आपने रेखा-चित्र के लिए कितना पारिश्रमिक दिया है। पर देखना है कि मुझे कितना देने जा रहे हैं।'' बाल शिल्पी ने कहा। उसकी बातों ने अगस्त्य के दिल में हलचल मचा दी।

अगस्त्य के पास अपनी पत्नी के लिए सुरक्षित रखे धन को छोड़ कुछ बचा न था। बाक़ी सारा धन उन्होंने जनता में बाँट दिया था। अगर वह धन शिल्पी को पारितोषिक के रूप में दे दे, तो लोपामुद्रा को क्या जवाब दे? यों सोचते हुए अगस्त्य अपनी पत्नी के पास पहुँचे। आश्चर्य की बात थी कि लोपामुद्रा के चेहरे पर कोई अनोखा तेज दमक रहा था।

लोपामुद्रा अनिर्वचनीय आनंद में आकर बोली, ''महर्षिजी, आप मुझे क्षमा करें। मैं पहले से ही यह बात अच्छी तरह से जानती थी कि एक ऋषि पत्नी का आचरण, खान-पान और वेष-भूषा भी मुनि-पत्नी के समान होना चाहिए। मुझे अब इस बात का आश्चर्य होता है कि मैंने आपको अच्छे-अच्छे गहने, वस्त्र और धन लाने को क्यों प्रेरित किया? मुझे लगता है कि किसी महान कार्य को संपन्न करने के लिए किसी अज्ञात

"आपने मेरे वास्ते जो धन जोड़ रखा है, क्या वह काफी न होगा?" लोपामुद्रा ने पूछा।

"सबेरा होने दो, कोई न कोई उपाय सोच लेंगे।" अगस्त्य ने समझाया।

"हाँ, मैं यह बात भूल ही गई थी। कल भादो शुक्ला चतुर्थी है। यानी विनायक चौथ का दिन है। लगता है कि प्रतिमा की चिंता में पड़कर आप महीने और तिथियों की बात तक भूल गये हैं।" लोपामुद्रा ने स्मरण दिलाया।

"यह तो आश्चर्य की बात है! कल विनायक चतुर्थी है और उसी दिन उनकी मूर्ति तैयार हो रही है!"

अगस्त्य को विस्मित देख लोपामुद्रा बोली, "वह शिल्पी बालक नहीं; मानव मात्र भी नहीं हो सकता।"

शक्ति ने मेरे मुँह से ये बातें कहलवाई हैं। मुझे अब न गहने चाहिए, न कपड़े, और न धन। मेरे अंदर तात्कालिक रूप से जो अज्ञान प्रवेश कर गया था, वह अब दूर हो गया है।"

लोपामुद्रा की बातों पर अगस्त्य महर्षि मन ही मन खुश हुए।

"शिल्पी तो आ गये हैं। समझ लो कि मूर्ति तैयार हो गई है। कहते हैं कि सबेरे तक मूर्ति बन जाएगी।" महर्षि ने कहा।

"क्या कहा? सबेरे तक वह महाशिला प्रतिमा का रूप धारण करेगी? वह शिल्पी क्या कोई देवता है या मानव?" लोपामुद्रा ने विस्मय में आकर पूछा।

"मानव ही है। तिस पर एक बालक! मेरी समझ में नहीं आता कि उसको पारितोषिक कितना देना है? और कैसे देना है?" अगस्त्य ने शंका प्रकट की।

अगस्त्य को अपनी पत्नी की बातों में कोई अद्‌भुत सत्य प्रतीत हुआ। रात बीतती जा रही थी, पर अगस्त्य को नींद नहीं आई। उनकी जिज्ञासा बढ़ती गई। वे इस ख्याल से बिस्तर से उठकर चल पड़े कि देखें, महाशिला कैसे मूर्ति के रूप में गढ़ी जा रही है।

महर्षि ने महाशिला के पास पहुँचकर जो दृश्य देखा, उससे उनका शरीर पुलकित हो उठा। वे उसी जगह लुढ़क पड़े। सैकड़ों छेनियाँ खुद शिला को गढ़ रही हैं। रंग-बिरंगी विद्युत कांतियाँ चारों तरफ़ फैल रही हैं। खन-खन की आवाज़ कान के पर्दों को फाड़ रही है। सारी छेनियाँ हाथी दाँत की नोक जैसे बज्र की भांति चमक रही हैं। महर्षि की समझ में न आया कि वे जो कुछ देख रहे हैं, वह सपना है या सच है। वे

इसी भ्रांति में अपने होश खो बैठे और नींद ने उन्हें घेर लिया। नींद से जागने पर अगस्त्य ने देखा, सामने खड़े हो बालशिल्पी उन्हें थपकी देकर जगा रहे हैं। पूरब में लालिमा छा रही है।

"महर्षि, यह क्या? आप यहाँ पर सोये हुए सपने देख रहे हैं? योग निद्रा प्रवीण आप सपनों की यह नींद कैसे सो रहे हैं? प्रतिमा बनकर तैयार है। रेखा-चित्र खींचनेवाले से कहिए कि वे ख़ुद आकर देख लें, कि उस चित्र के अनुरूप मूर्ति बन गई है या नहीं?" यों बालशिल्पी अगस्त्य को समझा ही रहे थे, तभी एक थाल में मोदक, जल और फूल लेकर लोपामुद्रा आ पहुँची। अगस्त्य चकित हो स्फटिक जैसे दमकनेवाली विघ्नेश्वर की प्रतिमा को निर्निमेष देख ही रहे थे, तभी बालशिल्पी ने पूछा, "अब बताइये, मेरा पारितोषिक क्या देनेवाले हैं?"

महर्षि संकोच करते हुए बोले, "महाशिल्पी, आपकी इस कला का मूल्य मैं क्या दे सकता हूँ? जो कुछ दूँ, वह पर्याप्त नहीं है। फिर भी मैंने आपके वास्ते जो धन सुरक्षित रखा है, वह अभी ले आता हूँ।"

बालशिल्पी ने कहा, "पहले आप मुझे यह बताइये कि रेखा-चित्र खींचनेवाले चित्रकार को आपने कितना पारिश्रमिक दिया? शिल्प गढ़ना श्रम से पूर्ण है, लेकिन शिल्प की आकृति के लिए आधार तो रेखाचित्र की रचना ही है। वह तो ऊहा से पूर्ण मेधा से भरी कला है।"

"बाल शिल्पाचार्य, रेखा चित्र खींचनेवाले कलाकार को कुछ नहीं दिया है। उस चित्र की रचना मेरी पत्नी ने की है।" इन शब्दों के साथ

लोपामुद्रा की ओर इशारा करने की मुद्रा में अगस्त्य ने उसकी ओर देखा। लोपामुद्रा उस समय किसी तन्मयावस्था में डूबी हुई थी।

"महर्षि, आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो उस रेखा-चित्र के पारिश्रमिक के रूप में उतना धन देता जितना एक महानगर के निर्माण के लिए पर्याप्त हो सकता है। वह रेखा-चित्र ऐसा महान है! आप यह सारा धन इसी देवी को दे दीजिए।" बाल शिल्पी ने सिफ़ारिश की।

इस पर अगस्त्य के मुँह से अचानक ये शब्द निकल पड़े, "मैंने दरअसल लोपामुद्रा के वास्ते ही यह धन जोड़कर रखा है।"

बालशिल्पी चौंककर बोले, "क्या कहा? यह तो स्त्री धन है? अच्छा हुआ कि आपने सच्ची बात बता दी। अगर आप मुझे यह धन दे देते या मैं आपसे ले लेता तो कैसा अनर्थ हो जाता! मैं उसमें से एक कौड़ी भी छूना नहीं चाहता।" यों जवाब देकर लोपामुद्रा की ओर मुखातिब हो बोले, "माताजी, आप अपने हाथों से मोदक का एक टुकड़ा मेरे मुँह में डाल दीजिए। वही मेरे लिए सच्चा पारितोषिक होगा। ब्रह्मा ने कभी शिल्पियों के माथे पर अपना लेख लिख दिया था कि गढ़ने के लिए पेट भरना ही सच्ची मजदूरी है।"

ये शब्द सुनते ही लोपामुद्रा ने मोदकों से भरी थाली बालशिल्पी के सामने रख दी और साष्टांग दण्डवत करके शिल्पी के चरण पकड़कर बोली, "विघ्नेश्वर! आपके अनुग्रह से हमारे जन्म तर गये हैं।" लोपामुद्रा यों विघ्नेश्वर की स्तुति कर ही रही थी कि इस बीच बालशिल्पी अदृश्य हो गये।

इसके बाद अगस्त्य पर छाई हुई माया अंतर्धान हो गई। वे विघ्नेश्वर की प्रतिमा के आगे प्रणाम करके बोले, "विघ्नेश्वर, मैं यह सोचकर आज तक अभिमान में डूबा रहा कि मैं अपूर्व योग बल रखता हूँ। पर मैं आपके सम्मुख एक दम अज्ञानी बना रहा। महान से महान व्यक्ति भी आपकी माया से अतीत नहीं हो सकता।" यों प्रणाम करके महर्षि अपने कान पकड़कर उठा-बैठी करने लगे। उसी वक़्त शिल्प के भीतर की सारी प्रतिमाएँ 'वातापि गणपति भजे' नामक कीर्तन हंसध्वनि राग में गाते प्रतीत हुईं।

तांबे के सिक्केवाला

परबत बामनापुर का निवासी था। उसमें लालच की मात्रा अधिक थी, तृप्ति कम। उसने बहुत धन कमाया था, पर और कमाने की उसकी तीव्र इच्छा थी। और कमाने के उद्देश्य से वह नगर जाने के लिए निकल पड़ा। अपने साथ आने के लिए उसने पड़ोसी प्रताप को भी बुला लिया।

प्रताप में लालच कम और तृप्ति ज़्यादा थी। वह अपने ही गाँव में रहकर आराम से ज़िन्दगी गुजारना चाहता था। पर वह परबत की बात टाल न सका। अनिच्छापूर्वक वह भी उसके साथ निकल पड़ा।

दोनों पैदल चलते गये। थोड़ी दूर जाने के बाद उन्होंने एक बैरागी को देखा, जो बेहोश पड़ा हुआ था। परबत ने सोचा, "इससे हमें लेना-देना क्या है? इसको लेकर भला माथापची क्यों करें।" पर प्रताप उसके विचार से सहमत नहीं हुआ। वह पास ही के सरोवर के पास गया और मुट्ठी भर पानी ले आया। बैरागी के मुख पर उसने वह पानी छिड़का। बैरागी होश में आ गया। बैठने के बाद उसने उन दोनों से कहा, "आपने मेरी बड़ी मदद की। मैं भी आपकी मदद करने की इच्छा रखता हूँ।"

"तुम तो बेहोश गिरे पड़े थे। भला तुम हमारी क्या मदद कर पाओगे?" व्यंग्य-भरे स्वर में परबत ने कहा।

"मेरे पास महिमा भरे दो संदूकचे हैं। उनमें से एक हर रोज़ सोने की एक अशर्फ़ी देता है। दूसरा हर रोज़ तांबे का एक सिक्का देता है। नियमानुसार मैं इन्हें उपयोग में नहीं ला सकता। इनके लिए योग्य व्यक्तियों की खोज में हूँ। मेरी बेहोशी एक नाटक मात्र थी। बहुत से लोगों ने मुझे बेहोश देखा, लेकिन कोई भी मेरी मदद करने आगे नहीं

- महर्षि -

आया। सिर्फ आप लोगों ने ही मेरी मदद की। आप दोनों में से जिन्होंने मेरी मदद ज़्यादा की, वह पहले इनमें से एक संदूकचे को चुने। परंतु एक बात अवश्य याद रखिये। आपने मेरी जितनी मदद की, उसका प्रतिफल उतना ही मिलेगा, उससे ज़्यादा नहीं।'' बैरागी ने कहा।

परबत को डर था कि प्रताप सोने की अशर्फ़ी देनेवाला संदूकचा पहले ले लेगा, पर प्रताप ने ऐसा नहीं किया। उसने कहा, ''आपकी सहायता करना मेरा धर्म है। किसी प्रतिफल की आशा से मैंने ऐसा नहीं किया। फिर भी आप देना चाहते हैं तो उसे लेने से इनकार करना भी उचित नहीं है। हम इस यात्रा पर हैं, इसकी वजह परबत है। इसलिए परबत ही पहले चुनेगा कि उसे कौन-सा संदूकचा चाहिए।''

परबत ने उसकी बातों पर बहुत खुश होते हुए हर रोज़ सोने की एक अशर्फ़ी देनेवाले संदूकचे को चुना। बैरागी ने परबत को सोने के सिक्केवाले संदूकचे को सौंपते हुए कहा, ''हमसफर बनकर प्रताप तुम्हारे साथ है। तुम्हारे ही कारण भाग्य ने इसे वरा है। प्रताप सचमुच ही सत्पुरुष है। ऐसे सत्पुरुष का साथ कभी मत छोड़ना।''

परबत और प्रताप बैरागी का आशीर्वाद लेकर आगे बढ़े। तब तक संदूकचे की दी हुई सोने की एक अशर्फ़ी परबत के पास थी और प्रताप के पास संदूकचे का दिया हुआ तांबे का सिक्का। दो दिनों की यात्रा के बाद जब वे नगर पहुँचे तब परबत ने प्रताप से कहा, ''अब हम दोनों को बिछड़ना होगा। मेरे पास सोने की भरपूर अशर्फ़ियाँ होंगी। इनकी रक्षा के लिए एक अच्छे घर का और

पहरेदारों का होना ज़रूरी है। तुम तो तांबे के सिक्केवाले हो, इसलिए कहीं भी सो सकते हो। तुम्हें किसी ख़तरे का सामना करना नहीं पड़ेगा। जैसी ज़िन्दगी की मुझे चाह भी, मिल गयी। तुम जैसा जीवन चाहते थे, तुम्हें मिल गया।''

यों वे दोनों बिछुड़ गये। तीन साल गुज़र गये। परबत ने एक सुंदर भवन का निर्माण करवाया और बड़े ही वैभव के साथ जीवन बिताने लगा। पर प्रताप मेहनत करते हुए अपना पेट भरने लगा। मुश्किल से उसके दिन गुज़रते थे। संदूकचा तांबे के जो सिक्के देता था, उन्हें वह बड़ी सावधानी से महफ़ूज रखता था। प्रताप उन्हें एक थैली में भरता था और कमर में बांध लेता था। उसकी हमेशा यह इच्छा होती थी कि दूसरे की सहायता करना कभी न भूलें।

प्रताप की कमर में बंधी थैली ने बहुत लोगों को आकर्षित किया। एक बार चोर ने उसकी चोरी की और उसमें तांबे के सिक्के पाकर चकित रह गया। उसने देखा कि तांबे के उन सिक्कों के एक तरफ़ ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के चित्र हैं तो दूसरी तरफ़ सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती के हैं। उन्हें देखकर उसे लगा कि कहीं ये मंत्रित सिक्के तो नहीं हैं? बस, उसी क्षण प्रताप से माफ़ी माँगते हुए उन्हें लौटा दिये।

तब प्रताप ने उससे कहा, ''भगवान के शाप से डर गये, इसलिए तुमने ये सिक्के मुझे वापस दे दिये। हर प्राणी में भगवान है। उस भगवान से भी डरो। चोरी छोड़ दो और मेहनत की कमाई से खुश रहो।''

उस दिन से चोर में परिवर्तन आ गया। किन्तु

प्रताप ने लोगों से बताया कि चोर में परिवर्तन उसके हितबोध के कारण नहीं, बल्कि तांबे के सिक्कों की महिमा के कारण आया।

धीरे-धीरे यह बात फैल गई कि प्रताप के तांबे के सिक्के महिमा से भरे हैं। इसलिए बड़ी संख्या में लोग उसके पास आने लगे और अपनी-अपनी समस्या सुनाने लगे। वे उसकी कमर में बंधी तांबे के सिक्कोंवाली थैली छूते और चले जाते। लोगों ने कहा भी कि ऐसा करने के कारण उनकी तक़लीफ़ें दूर हो रही हैं।

क्रमशः प्रताप के तांबे के सिक्कों में लोगों का विश्वास बढ़ने लगा। यहाँ तक कि रोगी भी आते और उस थैली को छूने के बाद ठीक हो जाते। प्रताप की आर्थिक स्थिति सुधारने और उसकी देखभाल करने बहुत से लोग आगे आये जिनमें धनवान भी थे।

परबत यह सब कुछ देख-सुन रहा था। तांबे के सिक्केवाले ने जो प्रसिद्धि पायी, वह पा नहीं सका। वह उससे ईर्ष्या के मारे जलने लगा।

एक दिन वह प्रताप से मिला और बोला, "मैं तो नहीं जानता कि तुम्हारे तांबे के सिक्कों में महिमा है या नहीं, पर लोग विश्वास करते हैं। बिना पूछे ही तुम्हें भेंट देते जा रहे हैं। तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध रहे हैं। जिस दिन लोगों को पता लग जायेगा कि तुम्हारे सिक्कों में महिमा नहीं है, ये तुम्हारा सर्वनाश करने पर तुल जायेंगे, तुम्हें पाताल में गाड़ देंगे। अच्छा इसी में है कि तुम कहीं और चले जाओ, जहाँ इन सिक्कों की महिमा को लोग नहीं जानते।"

प्रताप उसकी इस सलाह पर खुश होता हुआ बोला, "मुझे इस बात का डर नहीं है कि लोग मुझे पाताल में गाड़ देंगे। मैं तो सिर्फ यही चाहता हूँ कि मेहनत करूँ और ज़िन्दा रहूँ।" यों कहने के बाद उसी रात को वह उस नगर को छोड़कर चला गया।

अब प्रताप जिस देश में रहने आया, उसका राजा था अग्निसेन। उसकी पत्नी ज्वालामुखी कुछ दिनों से बहुत बीमार थी। वैद्य भी बता नहीं सके कि क्या बीमारी है और इलाज हो सकता है या नहीं। उन्होंने अपनी तरफ़ से बहुत कोशिश की पर कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

बैरागी को जब यह बात मालूम हुई तब उसने राजा से मिलकर कहा, "राजन्, तुम्हारी पत्नी के रोग के बारे में मैं सुन चुका हूँ। वह रोग कैसे दूर होगा, इसका मैं तुम्हें उपाय सुझाऊँगा। दिव्य विभूतियों व पत्नियों के चित्र तांबे के जिन सिक्कों पर मुद्रित हैं, उन्हें एक गंगाल में डालो। फिर उस गंगाल को पानी से भर दो। उस पानी से महारानी को नहलाओ। वह बिलकुल स्वस्थ हो जायेगी। प्रताप नामक एक सत्पुरुष के पास वे सिक्के हैं।

वह कल ही यहाँ आनेवाला है।'' यों कहकर वह चला गया।

बीच रास्ते में प्रताप बैरागी से मिला। उसने उससे इस देश में आने का कारण बताया। बैरागी ने भी महारानी की अस्वस्थता के विषय में बताया और उसे वहाँ जाने की सलाह दी।

राजधानी पहुँचने के बाद प्रताप राजा से मिला। महारानी के इलाज के लिए बैरागी ने जैसा करने को कहा था, वैसा ही किया। फिर उसने एक अंगीठी जलाने को कहा और सिक्कों को संदूकचे के साथ उसमें डाल दिया। कुछ ही क्षणों में महारानी रोग से मुक्त हो गयी। राजा ने बेहद खुश होते हुए प्रताप से कहा, ''कहो, तुम्हें क्या चाहिए? जो भी माँगोगे, देने तैयार हूँ।''

तब प्रताप ने कहा, ''महाराज, मैं मेहनत की कमाई पर जीना चाहता हूँ। कोई और इच्छा मेरी है नहीं। इन तांबों के सिक्कों की वजह से ऐसा मौक़ा खो रहा हूँ। इसीलिए मैंने उस संदूकचे को भी आग में डाल दिया।''

प्रताप की इन बातों को सुनकर राजा थोड़ी देर तक सन्न रह गया। उसके हाथों को पकड़ते हुए राजा ने कहा, ''तुम्हारे जैसे परोपकारी को, निस्वार्थी को, सत्पुरुष को मैंने आज तक नहीं देखा। तुम्हारे जैसा सुयोग्य व्यक्ति अगर किसी नगर का अधिकारी हो तो यह वहाँ की प्रजा का सौभाग्य होगा। जिस नगर में तुम रह रहे थे, मैं तुम्हें उसी नगर का अधिकारी नियुक्त करता हूँ।''

यों प्रताप अधिकारी बनकर उसी नगर में आया, जिस नगर के लोग उसे तांबे के सिक्केवाले के नाम से जानते थे। वह परबत से मिला और उसे अपनी कृतज्ञता जतायी, क्योंकि उसका मानना था कि परबत के ही कारण वह इतना भाग्यवान हो पाया।

तब परबत ने कहा, ''मैं स्वयं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। मेरे भाग्यवान होने के पीछे तुम्हारी उदारता है और तुम भाग्यवान हुए हो तो इसके पीछे तुम्हारे सद्गुण हैं। मैंने सोचा था कि धन से सब कुछ पा सकता हूँ। पर अब मैं जान गया कि मेरी सोच ग़लत है। तुमने साबित कर दिया कि अच्छाई से, परोपकार बुद्धि से ही यह संभव है। ऐसा करके तुमने मेरी आँखें खोल दीं। आज से मैं भी तुम्हारी ही तरह जीने की कोशिश करूँगा।''

करोड़पति

काँची में एक वैश्य रहा करता था। उसने व्यापार में करोड़ों रुपया बनाया। वह नया कुबेर के नाम से विख्यात हो गया। उसके बहुत-से लड़के और लड़कियाँ थीं। उसने दामादों को भी अपने घर ही रखा। उनको भी काम सिखाया। इस तरह उसने अपना व्यापार और बढ़ा लिया। बन्धु-बान्धवों के बीच वह वैभव से रहने लगा।

परंतु यह कुबेर घर से बाहर बड़ा लोभी था। उसने दान-धर्म के लिए या मंदिरों के लिए या देवी-देवताओं के लिए कभी कानी कौड़ी भी खर्च नहीं की थी।

एक दिन एक बैरागी, कुबेर के घर आया। उसने कहा कि उसे एक समय का भोजन दिया जाये। ''अरे, जा बे चोर, तू कहाँ से यहाँ आ मरा है।'' कुबेर झुँझलाया।

''यदि मैं चोर ही होता, तो भला मैं भीख क्यों माँगता?'' बैरागी ने पूछा।

दोनों में थोड़ी देर तक यूँ बातें होती रहीं। फिर कुबेर ने यह सोचकर कि वह उसका समय व्यर्थ कर रहा है, उसको नौकरों से बाहर भिजवा दिया। बाहर भेजे जाने पर भी, उस बैरागी ने जिद पकड़ ली और कहा कि जब तक उसको खाने-पीने का कच्चा माल न दिया जायेगा तब तक वह वहाँ से नहीं टलेगा। वह शाम तक घर के सामने बैठा रहा।

''चाहे तुम यहाँ मर जाओ, तब भी मैं कुछ नहीं दूँगा। चाहे, जितनी देर बैठो।'' कुबेर ने कहा। बैरागी तीन दिन, तीन रात, वहीं घर के सामने बैठा रहा। कुबेर से उसके संबंधियों ने कहा कि कहीं वह बैरागी शाप न दे दे। परंतु वह डरा नहीं। उसने घर का दरवाज़ा बंद करवा दिया। वह एक और दरवाज़े से आने-जाने लगा। कुछ दिनों बाद उसने देखा कि बैरागी कहीं चला गया है। कुबेर को ऐसा लगा, जैसे उसने कोई बड़ा मैदान मार लिया हो। उसे

- लक्ष्मीनारायण -

अपनी जीत पर गर्व हो रहा था। उसने सोचा कि अनपी बुद्धि से उसने एक बला टाल दी। पर जब उसने दरवाज़ा खुलवाया, तो बैरागी फिर आ धमका।

"यह बैरागी मेरे पीछे शनि की तरह लगा हुआ है, मालूम करो कि क्यों आया है।" कुबेर ने एक आदमी को भेजा।

"मैं तुमसे कुछ माँगने नहीं आया हूँ। तुमसे कुछ बात करनी है।" बैरागी ने कुबेर के पास खबर भिजवायी।

कुबेर ने कहला भेजा कि छः महीने तक तुमसे मिलने के लिए मेरे पास समय नहीं है। बैरागी चला गया और ठीक छः महीने बाद आया। कुबेर फिर उसको टालता गया। बैरागी, जब कभी उसे बुलाता, वह आता। इस तरह एक साल बीत गया। यह सोचकर कि बैरागी की बात उसे सुननी ही पड़ेगी, उसने आखिर उसको बुलवा भेजा।

"मैं एक साल से देख रहा हूँ। माया के कारण, इन पत्नी, पुत्रों और बंधुओं के प्रति मोह के कारण, तेरी आँखों पर अंधेरा छा गया है। आँखें खोलकर सचाई को देखो।" बैरागी ने कहा।

"आत्मीय जनों को त्यागने का उपदेश देने के लिए ही क्या मेरे पास इतने दिनों से आ रहे हो?" कुबेर ने पूछा।

"इनमें सचमुच तुम्हारा आत्मीय एक भी नहीं है। जब तक तुम कमा रहे हो, तब तक ही

ये तुम्हारे साथ हैं। उसके बाद तुम जिन्दा हो या मर गये हो, कोई न देखेगा। अगर चाहो, तो मैं यह बात सिद्ध करके दिखा दूँगा।" बैरागी ने कहा।

इसके लिए वैश्य भी मान गया और बैरागी उसे एक उपाय बताकर चला गया।

इसके कुछ दिनों बाद कुबेर ने यूँ दिखाया, जैसे उसको कोई बीमारी हो गई हो। उसने अपनी पत्नी से कहा, "लगता है, मौत नज़दीक आ गई है। इतने दिन जिया, पर कभी कुछ पुण्य न किया। अगर यह मौत एक साल बाद आती तो कितना अच्छा होता!" वह यूँ कहता-कहता अकड़-सा गया। कुबेर की पत्नी घबरा गई। उसने वैद्य को बुलवाया, पर वह बता न सका कि क्या रोग है। वह चला

गया। कुबेर ने अपनी साँस, जिस तरह बैरागी ने बताया था, उस तरह रोक ली।

उसके यहाँ करीब-करीब दो सौ आदमियों को खाना मिल रहा था। वे सब कुबेर के चारों ओर बैठकर रोने-धोने लगे। कुछ ने कहा, बड़े-बड़े लोग भी मौत से नहीं बच सकते।

ठीक उसी समय बैरागी वहाँ आ गया। उसने लोटे में दूध लेकर सबको चुप रहने का इशारा करके कहा, "यदि तुममें से कोई इनको जिलाना चाहता हो, तो बताओ। यह देखो औषधि।"

कुबेर की पत्नी वगैरह ने बैरागी के पैरों पर पड़कर कहा, "रक्षा कीजिये! आप जो चाहेंगे, देंगे। इनको यह औषधि देकर जीवित कर दें।"

इस पर बैरागी ने कहा, "पगलो, कोई भी औषधि काम नहीं करती, जब मौत पास आ जाती है? इस औषधि को यदि तुममें से किसी ने लिया, तो वह तुरंत मर जायेगा। उसकी बची आयु के कारण यह मरा आदमी बहुत समय तक जीवित रह सकेगा। जो इसको अपनी आयु देने को तैयार हो, वह इस औषधि को पी जाये।"

कोई नहीं बोला। सब मौन साध कर एक दूसरे को देखने लगे। कुछ देर देखकर बैरागी ने पूछा, "कोई भी इस आदमी के लिए नहीं मरना चाहता?" कोई जवाब नहीं मिला।

"अरे... अरे, इस आदमी ने आप सब लोगों को सुखी रखने के लिए रात-दिन मेहनत की। न्याय-अन्याय से पैसे कमाने में सारी जिन्दगी बिता दी और परलोक जाने के लिए कोई भी दान-पुण्य न किया और अब एक भी उसके लिए अपने प्राण देने को तैयार नहीं है, आश्चर्य की बात है!" बैरागी ने कहा।

"स्वामी, आँखें खुल गई हैं।" कहकर कुबेर उठ बैठा। सब चकित रह गये। स्तब्ध हो गये।

इसके बाद कुबेर ने अपने बेकार बंधुओं को भेज दिया। अपनी संपत्ति को उसने दान-धर्म, गरीबों की सहायता, निःशुल्क विद्यालय और अस्पताल के निर्माण और अन्य पुण्य कार्यों में लगा दिया। व्यापार अपने लड़कों को सौंप दिया और स्वयं अपना जीवन एकान्त में जाकर सत्य और आत्मा की खोज में बिताने लगा।

चन्दामामा प्रस्तुति
अपराजेय गरुड़
25
चित्र : महेश
सर्पदेश में, तांत्रिक नागबंधु के आदेश पर, नरेन्द्रदेव आदित्य को बंदी बनाने के लिए चन्द्रपुरी के लिए रवाना होता है। उसकी नाव डूब जाती है और उस पर तथा आदिवासी प्रमुख पर घड़ियाल आक्रमण कर देते हैं। प्रमुख अपने प्राण गवां देता है जबकि कमाण्डर का अंग-भंग हो जाता है। आदित्य जो पहले से ही सर्पदेश में है, गुफा में प्रवेश करने में सफल हो जाता है, जहाँ उसके अंग-रक्षक तांत्रिक के सभी शिष्यों को बंदी बना लेते हैं। तांत्रिक अपने शिष्यों को आवाज देता है किन्तु किसी का उत्तर नहीं मिलता।
जब आदित्य गुफा के अंतरंग भाग की ओर बढ़ता है, तब उसे बाहर आते हुए तांत्रिक मिल जाता है। उसके पीछे रवीन्द्रदेव और आप्त पुरुष भी हैं।
अभी तांत्रिक की नजर से मुझे बचना चाहिए।
ताज्जुब है, यहाँ कोई भी दिखाई नहीं दे रहा।
वे सब के सब आदित्य को देखने गये होंगे।
आदित्य तांत्रिक का मुकाबला करने के पहले एक रणनीति की योजना बनाता है।
केवल रवीन्द्रदेव को गिरफ्तार करो। मैं तांत्रिक से बाद में मिलूँगा।
जी हाँ महानुभाव ! जैसा आप कहें।
तांत्रिक को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जहाँ अग्नि कुण्ड प्रज्वलित किया गया था उस खुले मैदान की ओर एक विचित्र प्रभा मण्डल बढ़ता जा रहा है।
एक असाधारण प्रभा मण्डल ! क्या यह एक शुभ लक्षण नहीं है?
आदित्य के आदेशानुसार कुछ आदिवासी युवक उसे बंदी बना लेते हैं।
अब मुझे अग्निकुण्ड की ओर ले चलो।

तांत्रिक अपने शिष्यों को पुनः पुकारता है।
वे सबके सब कहाँ गायब हो गये?
यह क्या? यहाँ सैनिक?
आदित्य के अंगरक्षक रवीन्द्रदेव को तथा आत्म पुरुष को घेर लेते हैं। आत्म पुरुष चकित रह जाता है।
क्या तुम्हें मालूम है कि मैं कौन हूँ? यहाँ से चले जाओ।
तुम कौन हो? क्या चाहते हो?
आपको हम लोगों के साथ चलना है महानुभाव!

नागबंधु और आदित्य पहली बार आमने-सामने होते हैं।
तुम आदित्य?
हाँ, मैं आदित्य हूँ, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो।
आखिर !
तांत्रिक को आश्चर्य नहीं हुआ। वह इस प्रकार व्यवहार करता है मानों उसे आदित्य का इंतजार था।
मैं भी इस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था।
यह तो आरंभ है। मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ। सावधान रहो!
अब क्या होगा?
अचानक तांत्रिक एक भयानक आकृति में बदल जाता है। वह आग उगलता हुआ तीन सिरवाला भयंकर सर्प बन जाता है।
आदित्य !!!
आदित्य !
आदित्य !!
तुम्हारा आखिरी समय निकट है आदित्य !

आदित्य की पगड़ी के अंदर का पंख एक भयावने पक्षी के विशाल डैनों का रूप ग्रहण कर लेता है।
आदिवासी और अंगरक्ष
भयातुर हो इस दृश्य को देख
हैं, जबकि ज्योतिर्मय गरु
भयंकर सर्प का मुकाब
करता है।
परिणाम स्वरूप उनमें भयंकर युद्ध होता है। गरुड़ सर्प को अपने पंजों में पकड़ने में सफल हो जाता है। अपने डैनों की प्रबल फड़फड़ाहट से...
आसमान में
जाता है। गुफा और
के ऊपर चक्कर लगाने के बाद
झपट्टा मारकर सर्प को अग्निकुण्ड में डाल देता
क्रमशः

मनोरंजन टाइम्स
मगरों में भरो रंग
ये मगर तुम्हारी प्रतीक्षा में हैं कि तुम उन्हें रंगीन बना दो। अपना रंग-मंजूषा खोलो और काम शुरू कर दो।
हे, नदी-तट का वातावरण कितना शीतल है न?
खोजो उसे
इस चित्र में एक साथी अपना सही स्थान छोड़ चुका है। क्या बता सकते हो कि वह कहाँ पर है और उसके घर तक वापस जाने का मार्ग क्या है?

कितने अंगूर?
आह ! इन रसीले अंगूरों को देख मुँह में पानी आ रहा है ! पर ठहरो जरा ! यदि इनका मजा लेना हो तो तुम्हें इनकी गिनती करनी होगी।
बेठिकाने !
हंम्....... इस दृश्य में सबकुछ ठीक-ठाक नहीं लगता ! चित्रकार जल्दी में था। उसकी हड़बड़ ने बहुत कुछ गड़बड़ कर दिया। क्या तुम बता सकते हो कि उसने क्या गलती की है ?
(उत्तर - पृष्ठ ६६ पर)

चित्र कैप्शन प्रतियोगिता

वाक्य बनाओ !
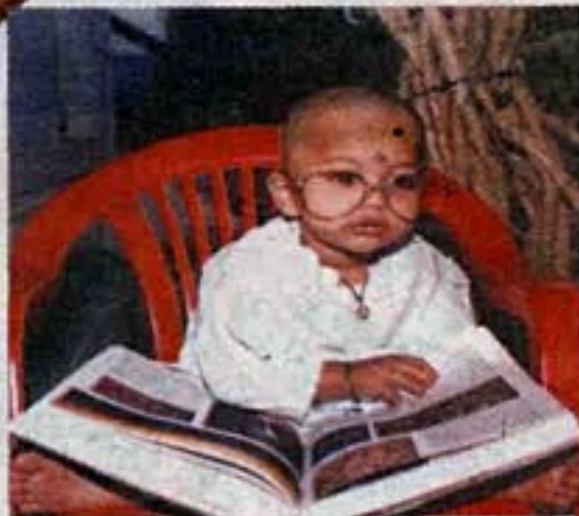
क्या तुम कुछ शब्दों में ऐसा चित्र परिचय बना सकते हो, जो एक दूसरे से संबंधित चित्रों के अनुकूल हो?

चित्र परिचय प्रतियोगिता, चन्दामामा,
प्लाट नं. ८२ (पु.न. ९२), डिफेन्स आफिसर्स कालोनी, इकाडुथांगल, चेन्नई - ६०० ०९७.

जो हमारे पास इस माह की २० तारीख तक पहुँच जाए। सर्वश्रेष्ठ चित्र परिचय पर १००/- रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा, जिसका प्रकाशन अगले अंक के बाद के अंक में किया जाएगा।

बधाइयाँ

फ़रवरी अंक के पुरस्कार विजेता हैं :

के. निज़ामुद्दीन
२-१-५४९/२, शंकर मठ रोड,
पो. - नया नालाकुण्टा,
हैदराबाद - ५०० ०४४.

विजयी प्रविष्टि

घर में करो आराम, बाग है अपना।
मत देखो बन्नो की कार का सपना॥

मनोरंजन टाइम्स के उत्तर (पृष्ठ-६४)

कितने अंगूर? १९ अंगूर

बेठिकाने : १. बतख के कान हैं, २. मगरमच्छ के सींग उग आये हैं, ३. डेज़ी फूल नदी में उग रहे हैं, ४. 'खोजो उसे' में मछली जल से बाहर है, ५. केटरपिलर के पंख हैं।

खोजो उसे : क्या मछली को खरगोश के पास देखा है?

Printed and Published by B. Viswanatha Reddi at B.N.K. Press Pvt. Ltd., Chennai - 600 026 on behalf of Chandamama India Limited, No. 82, Defence Officers Colony, Ekkatuthangal, Chennai - 600 097. Editor : Viswam